गीता में ज्ञान योग

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

सम्पादक एवं संकलनकर्ता

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

श्री नृसिंह भवन

संन्यास आश्रम,

भक्तानन्द शिव मन्दिर

भीनासर 334403

बीकानेर (राजस्थान)

मो. : 09413769139

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- श्री सुशील कुमार ताम्बी
  प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
  A/3 आर्य नगर
  एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
  मुरलीपुरा, जयपुर 302039
  फोन : 0141-2233765 मो. : 09829547773

- **ज्ञान गंगा प्रकाशन**
  पाथेय भवन,
  बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
  दूरभाष : 0141-2371563

- **अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना**
  आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
  नई दिल्ली 110055
  फोन : 011-23675667

- **हिन्दू राइटर्स फोरम**
  129-बी, डी.डी.ए. फ्लैट्स (एम.आई.जी.)
  राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 110027

- **जागृति प्रकाशन**
  श्री कृष्णानन्द सागर
  एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
  फोन : 0120-2538101 मो. : 09871143768

ISBN 978-93-84133-07-8

प्रथम संस्करण : 2015 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : चालीस रुपये मात्र

आवरण : गौरीशंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

GITA MEN GYAN YOG (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri

₹ 40

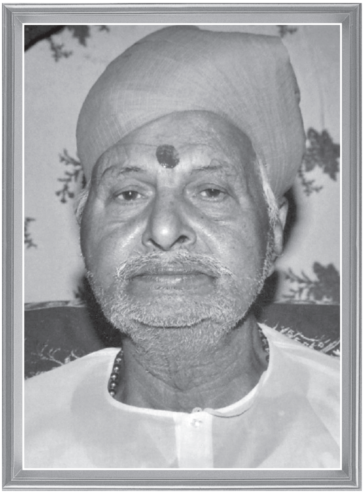
आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं। संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि



स्मृति शेष

बाबू ईश्वरदास सारड़ा

जन्म : 27-3-1925

निर्वाण : 20-1-2008



स्मृति शेष

सीतादेवी सारड़ा

जन्म : 14-4-1927

निर्वाण : 15-6-2014

सौजन्य

श्री गौरीशंकर सारड़ा ट्रस्टी

बाबू ईश्वरदास-सीतादेवी सारड़ा चैरिटेबल ट्रस्ट

भीनासर

प्रकाशकीय

मानव मन की तीन मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं—ज्ञानात्मक (congnition), रागात्मक (Affection) तथा संकल्पात्मक (conception)—इन्हें सरल शब्दों में knowing, feeling, willing कह सकते हैं। इन तीनों जीवनमूल्यों के अनुरूप ईश्वर प्राप्ति या मोक्ष प्राप्ति के तीन मार्ग हैं—ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग। जीव सीमित चेतना वाला है। वह परम चैतन्य को प्राप्त करना चाहता है। व्यक्तिगत चेतना को परम चेतना तक ले जाने के लिए मनुष्य के पास चेतना के अतिरिक्त और कोई सीढ़ी नहीं है। मनुष्य के अन्दर जिज्ञासा है वह जानना चाहता है यदि उसकी ज्ञानात्मक प्रवृत्ति प्रबल है तो उसे चरम परम सत्य की प्राप्ति के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए। हम सब कुछ न कुछ जानते हैं तथा जानने की जिज्ञासा सदा लिए रहते हैं। किन्तु बहुत कुछ जानकर भी हम ज्ञानी नहीं कहलाते क्योंकि हमने चरम परम सत्य को नहीं जाना। यदि हमारी जानने की धुन तब तक संतुष्ट न होवे जब तक परम सत्य की उपलब्धि न हो जाए—तब हमारी ज्ञानात्मक प्रवृत्ति ही हमें ज्ञानयोग का साधक बना देगी। ज्ञानात्मक प्रवृत्ति सबमें है, किसी में प्रबल, किसी में सामान्य। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—जानना है तो पूर्ण को जानो। यही ज्ञानयोग है। ज्ञानयोग का सूत्र है know the perfect.

इस लेख में गीता के सन्दर्भ से ज्ञानयोग पर विचार किया गया है। यह लेख ओबराय समग्र के पंचम खण्ड से संकलित है। इस पुस्तक का समस्त व्यय-भार श्री गौरीशंकर सारड़ाजी ने सहर्ष स्वीकार किया है। प्रभु की कृपा उन पर सपरिवार सदैव बरसती रहे। परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद एवं सांखला प्रिण्टर्स के प्रिंटिंग कार्य में सौहार्दपूर्ण सहयोग से प्रकाशित हो रही है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि
सम्पादक व संकलनकर्ता
मो. 09413769139

अनुक्रम

ज्ञानयोग तत्त्व

ईश्वर तत्त्व

ईश्वर शब्द ईश धातु से बना है। जिसका अर्थ है ईशन करने वाला अर्थात् शासन करने वाला। ईश या ईश्वर का अर्थ है—सृष्टि का शासक। प्रकृति की भिन्न-भिन्न शक्तियों का शासन भिन्न-भिन्न देवों के अधीन माना जाता है। जैसे वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर, इन्द्र आदि देवता भिन्न-भिन्न शक्तियों के स्वामी हैं। किन्तु इन देवताओं का भी ईशन करने वाला जो देवाधिदेव है उसे परमेश्वर (परम + ईश्वर) अर्थात् सबसे बड़ा शासनकर्ता कहा जाता है।

कई पश्चिम के भ्रमित विचारक यह भ्रान्ति फैलाते हैं कि भारतीय दर्शन में या हिन्दू धर्म में बहु-देवतावाद है। इसकी तुलना में वे ईसाई एवं इस्लाम पंथ के एकेश्वरवाद को अधिक श्रेष्ठ सिद्धान्त बताते हैं। वास्तव में विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ वेद में बार-बार एक-ब्रह्म, एकेश्वरवाद, एकात्मवाद अथवा एकतत्त्ववाद का निरूपण किया गया है। जैसे—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः। 6/11 श्वेताश्वतर उ.

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा। 2/2/12 कठ उ.

शान्तं शिवमद्वैतम्। 7 माण्डूक्योपनिषत्

एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति। आदि।

वास्तव में एकतत्त्व की सर्वोच्च सत्ता को मानकर उसी के अधीन नानाविध विभागों के भिन्न-भिन्न देव हैं। परमेश्वर से भिन्न या विरोधी सत्ता किसी देव की हो ही नहीं सकती। जिस प्रकार देश का सर्वोच्च शासक राष्ट्रपति है, उसके अधीन भिन्न-भिन्न विभागों (रेल, डाक तार, वित्त, ऊर्जा आदि) के मंत्री काम करते हैं। यदि हमें रेल विभाग से काम हो तो हमें रेल मंत्रालय जाना चाहिए न कि राष्ट्रपति भवन में, यदि उद्योग का काम है तो उद्योग मंत्रालय में, वित्त का काम है तो वित्त मंत्रालय में जाना चाहिए। अन्य धर्मों में ईश्वर के अधीन कार्यों के विभाग बंटे हुए नहीं है इसलिए नून-तेल, लकड़ी से लेकर भक्ति, शक्ति और मोक्ष तक सब विभागों के काम एक अल्लाह या God के माथे मढ़े हुए हैं। यदि

लोक व्यवहार में म्युनिसिपेलिटी की समस्याएं, प्रदेश की समस्याएं, न्यायालय के सब विवाद, उद्योग, ऊर्जा, वित्त, खाद्य के सब आवेदन राष्ट्रपति के माथे मढ़ दिए जाएं तो राष्ट्रपति पागल हो जाएगा और देश में अव्यवस्था फैल जाएगी। साधारण कर्मचारी, डाकिया या सिपाही तक भी जिस सत्ता से काम कर रहा है वह राष्ट्रपति से ही प्राप्त हुई है। कर्तव्य पालन के समय सिपाही का तिरस्कार भारत सरकार का तिरस्कार माना जाता है और नौकरी से अलग हो जाने पर उसको प्राप्त राष्ट्रपति की शक्तियां समाप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार सब देवों के विभाग अलग-अलग होते हुए भी उनकी शक्ति का मूल एक परमेश्वर ही है। मूल में एकता है तूल में अनेकता। वह एक ही अपने को अनेक रूपों में प्रकट करता है। हिन्दू धर्म के इस एकात्मवादी बहुदेववाद को मैक्समूलर Henotheism कहता है। इसका भाव यह है कि वह एक परमेश्वर सृष्टि संचालन के लिए नाना रूपों में भास रहा है। वेद के अनेक मंत्रों में सब देवों की मूलभूत एकता को स्पष्ट किया गया है।

परमेश्वर की सत्ता अनेक धर्मों का आधार बिन्दु है। प्राय: लोग ऐसा मानते हैं कि परमेश्वर की प्राप्ति के लिए साधना ही धर्म है। किन्तु भारत में दो धर्म ऐसे हैं जो ईश्वर की सत्ता के विषय में मौन हैं या ईश्वर की सत्ता के विषय में इनकार करते हैं। बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म ईश्वर को माने बिना भी धर्म कहलाते हैं। एक आधुनिक पंथ देव समाज भी ईश्वर की सत्ता को नहीं मानता। अत: धर्म का केन्द्रीय बिन्दु ईश्वर न होकर मोक्ष साधना है। सनातन धर्म, आर्य समाज जिसे मोक्ष कहते हैं उसे जैन मुक्ति या अर्हत् पद, कैवल्य पद और बौद्ध निर्वाण कहते हैं। डॉ. राधाकृष्णन् का मत है कि बौद्धों का निर्वाण ही ब्रह्म पद है और गीता का ब्रह्म निर्वाण का ही रूप है। राधाकृष्णन्, गांधी तथा विवेकानन्द आदि बुद्ध को नास्तिक नहीं मानते। ईश्वर के विषय में मौन का अर्थ यही लगाते हैं कि ईश्वर तो है किन्तु वाणी उसका कथन नहीं कर सकती। जैन जीवन के लक्ष्य के रूप में ईश्वर या भगवान् को मानते हैं। किन्तु सृष्टि के प्रारम्भ में कोई सृष्टिकर्ता भगवान् था, ऐसा वे नहीं मानते। ईश्वर उनकी साधना का अन्तिम लक्ष्य बिन्दु है। किन्तु सृष्टि का प्रारम्भिक बिन्दु नहीं है।

ईश्वर के भिन्न-भिन्न नाम—मोटे तौर पर एक ही ईश्वर को अनेक गुणवाचक विशेषणों से पुकारा जाता है। ब्रह्म का अर्थ वृहत् या विराट् है। ईश का अर्थ शासन करने वाला, भगवान् का अर्थ तेज वाला, प्रभु का अर्थ स्वामी, जगदीश का अर्थ जगत् का स्वामी, जगन्नाथ, विश्वनाथ का भी यही अर्थ है। विश्व को पालने वाला, विश्वम्भर, आत्मा का अर्थ सच्चा मैं, परमात्मा का अर्थ सर्वोपरि श्रेष्ठ आत्मा, परात्पर का अर्थ परे से परे, विभु का अर्थ व्यापक, देव का अर्थ प्रकाशमान, विष्णु का अर्थ व्यापक, नारायण का अर्थ विष्णु रूप से नार

(जल) में वास करने वाला, ब्रह्म का अर्थ बड़ा सृष्टिकर्ता, रुद्र का अर्थ रुलाने वाला, शिव का अर्थ कल्याण, इन्द्र का अर्थ इन्द्रियों का राजा अथवा देवताओं का राजा। इस प्रकार ईश्वर के लिए प्रयुक्त होने वाले भिन्न-भिन्न नाम ईश्वर के भिन्न-भिन्न गुणों के वाचक हैं। विष्णुसहस्रनाम में केवल विष्णु के ही हजार नाम गिनाये गये हैं। गोपालसहस्रनाम में केवल कृष्ण के एक हजार नाम गिनाये गए हैं। नाम अनेक होते हुए भी ईश्वर तत्त्व एक है। जैसे जल को वारी, पानी, उदक आप, वॉटर कहें। सब एक ही तत्त्व के वाचक भिन्न नाम हैं। एक ही व्यक्ति को उसका मित्र श्यामलाल के नाम से पुकारता है, बच्चे पिताजी कहकर पुकारते हैं, भाई भइया कहकर पुकारता है। दफ्तर वाले बड़ा बाबू कहकर पुकारते हैं। पिता बेटा कहकर पुकारता है, माता छोटू कहकर पुकारती है, नौकर मालिक कहकर पुकारता है और बचपन का लंगोटिया यार श्यामू कहकर पुकारता है। किन्तु नाम अनेक होने पर भी व्यक्ति अनेक नहीं हो गया। उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, गणेश, सूर्य, शक्ति आदि भिन्न-भिन्न नाम-रूप हो जाने पर भी ईश्वर तत्त्व एक ही रहा।

इष्टदेव की स्वाधीनता—हिन्दू धर्म में सबको लोकतांत्रिक पद्धति से अपने-अपने मन के अनुकूल इष्टदेवता को चुनने की छूट दी है। यदि पिता आर्य समाजी होने से निराकार का उपासक है और उसकी पत्नी प्रतिदिन शंकर की पूजा करती है। बेटा राम भक्त है, बेटी कृष्ण की भक्त है, भाई शक्ति का उपासक है तो भी घर में इष्टदेव की भिन्नता के कारण कोई विवाद या कलह नहीं होती। सर्वदर्शन संग्रह के लेखक स्वामी माधवाचार्य ने देश में प्रचलित भिन्न-भिन्न पंथों एवं दर्शनधाराओं को समन्वित करते हुए उसकी एक प्रार्थना लिखी—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरता कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं नो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः।।

शैव लोग जिसकी शिव रूप से उपासना करते हैं, बौद्ध लोग जिसे बुद्ध रूप में पूजते हैं, प्रमाण में पटु न्याय दर्शन के विद्वान् जिसे सृष्टिकर्ता के रूप में पूजते हैं, जैन जिसे अर्हत् (मुक्त) एवं नित्य संबोधन कर पूजते हैं, पूर्व मीमांसा दर्शन वाले जिसे यज्ञ रूप में पूजते हैं, वही त्रैलोक्यनाथ हरि हमें हमारा मन-वांछित फल (मोक्ष) प्रदान करें।

भारत के इतने उदार एवं लोकतांत्रिक धर्म की तुलना में पश्चिम के लोग पूजा पद्धति के थोड़े-थोड़े मतभेद के कारण हजारों लोगों को तेल छिड़ककर जीवित जलाते रहे और आज तक आयरलैण्ड में यह कट्टरपंथी हिंसात्मक पागलपन जारी है। संसार में संघर्ष एवं लड़ाइयां या तो स्वार्थ की होती हैं या अहंकार की। स्वार्थ की

लड़ाई में दो या अधिक व्यक्ति एक ही वस्तु को पाना, लूटना चाहते हैं। उनके स्वार्थ की टकराहट से संघर्ष होता है। अहंकार की लड़ाई में कुछ पाने या लूटने का हेतु नहीं रहता। केवल मूंछ की लड़ाई होती है। दोनों पक्ष द्वेषवश अपने को ऊंचा, श्रेष्ठ या ठीक प्रचारित करना चाहते हैं। इस संघर्ष में भले ही दोनों पक्ष गलती पर हों अपने को ठीक सिद्ध करने में दोनों ही लड़ते-लड़ते नष्ट हो जाते हैं। ईश्वर की प्राप्ति के लिए स्वार्थ और अहंकार का त्याग अनिवार्य है। किन्तु जब स्वार्थी और अहंकारी लोग धर्म के क्षेत्र में घुस जाते हैं तो ईश्वर के नाम पर या उसके स्वरूप पर बड़े भीषण हिंसक संघर्ष करने लगते हैं। यह वैसे ही है जैसे कोई अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त सिद्ध करने के लिए मतभेद रखने वालों की गर्दनों पर तलवार चला दे।

ईश्वर की सत्ता का प्रश्न, क्या ईश्वर है या नहीं

इस पर युगों से विवाद चलता आया है। बड़े-बड़े दार्शनिकों ने इसके पक्ष-विपक्ष में अपने-अपने तर्क दिए हैं। ग्रंथों में ईश्वर की सत्ता सिद्ध हो जाने पर भी यह अध्याय बंद नहीं होता। क्योंकि हर मानव को स्वयं अपने जीवन में अपने विवेक से ईश्वर की सत्ता का निर्णय करना है। अतः पहले के दार्शनिकों कणाद, गौतम, व्यास, शंकराचार्य, कांट आदि के बड़े उत्तम तर्कों से भी मानव की पूर्ण संतुष्टि तब तक नहीं होती जब तक वह अपने विवेक से इस विषय का स्वयं निर्णय नहीं कर लेता है। इसलिए ईश्वर की सत्ता का प्रश्न चिर प्राचीन होते हुए भी नित्य नवीन है।

एक आधारभूत प्रश्न है कि क्या कोई सृष्टि का चरम परम सत् है या नहीं। इसके उत्तर में अधिकांश विचारक यही उत्तर देते हैं कि बिना किसी सत् वस्तु के सृष्टि की सत्ता सम्भव ही नहीं। अतः सृष्टि का कोई चरम परम सत्य अवश्य है। इसके विपरीत कुछ लोग सृष्टि को अव्यवस्था और अपघटना का नियमहीन खेल मात्र मानते हैं जिसमें कोई भी चरम सत्य नहीं है। सृष्टि को Cosmos न मानकर Chaos मानते हैं। मानव जीवन का कुछ उद्देश्य न मानकर उसे निरुद्देश्य, अपघटना मात्र मानते हैं।

यह विचार तर्कहीन एवं विवेकशून्य प्रतीत होता है।

(क) सृष्टि में एक सुव्यवस्था है अतः इसका कोई व्यवस्थापक होना चाहिए। क्रमबद्ध, लयबद्ध रचना बिना किसी रचनाकार के सम्भव नहीं।

(ख) सृष्टि केवल भौतिक तत्त्वों का निरुद्देश्य खेल मात्र नहीं है। इसमें एक नैतिक उद्देश्य भी छिपा हुआ है। अनेक बार बड़े विस्मयकारी ढंग से निर्बल एवं असहाय की रक्षा और बड़े शक्तिशाली दुष्ट को दण्ड के उदाहरण अनुभव में आते हैं।

मेरे मित्र श्री हिंगोरानी कराची में इंजीनियर थे। बहुत वर्षों के पश्चात् एक बार शिमला में संन्यासी रूप में एक व्यक्ति को देखकर मुझे लगा कि कहीं यह

हिंगोरानी तो नहीं है। कुछ क्षण ध्यान से देखने पर दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। संन्यास की कहानी पूछने पर उन्होंने जो बताया वह प्रकृति के नैतिक उद्देश्य का ज्वलंत प्रमाण है। विभाजन से पूर्व कराची से बम्बई एक बहुत तेज गाड़ी चलती थी जिसे कराची बम्बई मेल कहते थे। एक बार वे उसमें यात्रा कर रहे थे। प्रथम श्रेणी के डिब्बे में उनके साथ एक धनी सेठ अपनी पत्नी एवं नन्हे बच्चे के साथ बैठा था। गाड़ी जब पूरे वेग में थी और आगे 50-60 मील तक कोई स्टेशन नहीं था। अचानक डिब्बे के शौचालय वाले कोष्ठ से एक लम्बे-चौड़े शरीर का पठान निकला जिसने पिस्तौल लटका रखी थी और दोनों हाथों में छुरा लिए हुए था। उसने तुरन्त सेठ की पत्नी को छुरा दिखाकर गहनों का बक्सा छीनकर गाड़ी की खिड़की से बाहर पटक दिया। दूसरे क्षण सेठानी की गोद से दुधमुंहा बच्चा छीनकर उसके गले की सोने की कंठी के लोभ में उसे भी खिड़की से बाहर पटक दिया। तीसरे क्षण वह स्वयं उछलकर तेज दौड़ती गाड़ी से छलांग लगाकर निकल गया। यह तीनों कार्य तीन क्षणों में इतनी जल्दी में हुए कि इसके पहले कि श्री हिंगोरानी गाड़ी की जंजीर खींचकर उसे रोक सकें पठान उछलकर भाग भी गया। जंजीर खींचकर गाड़ी रुकते-रुकते कई मील आगे निकल चुकी थी। सेठ-सेठानी मानसिक आघात से बेहोश पड़े थे। बीच-बीच में होश आने पर सेठानी भयंकर चीत्कार करती थी। गाड़ी पीछे ले जाने पर सबसे प्रथम वह स्थल आया जहां पठान छलांग लगाकर चलती गाड़ी से कूदा था। किन्तु प्रकृति का अद्‌भुत विधान देखा। पठान छलांग लगाते ही सामने एक सिगनल के खम्भे से टकराकर चूर-चूर हो खून से लथपथ मृत पड़ा था। थोड़ा और पीछे जाने पर आभूषण का बक्सा मिला जो पिचक तो गया था, किन्तु टूटा नहीं था। गाड़ी को बार-बार आगे-पीछे ले जाने पर भी बच्चे का अता-पता नहीं मिला। माता की चीत्कार, पिता के आघात और अन्य यात्रियों की चिन्ता से उस काल-रात्रि में जंगल का दृश्य और भी भयावना बन रहा था। अन्त में जब सबने मान लिया कि जंगल में बच्चे को कोई पशु उठाकर ले गया होगा और अब विवशतावशात् गाड़ी को आगे बढ़ाना ही होगा। तब गाड़ी चलने से पूर्व हिंगोरानी रेलवे लाइन के एक ओर लघुशंका करने के लिए बैठा। उसे यह अनुभव हुआ कि निकट में कुछ दूरी पर 'कोई जीव साँस ले रहा है। उसने गाड़ी से टार्च निकालकर उस दिशा में बीस-पचीस कदम जाने पर एक अद्‌भुत चामत्कारिक दृश्य देखा। मां ने बच्चे के एक छोटे से कपड़े की लंगोट लगा रखी थी, जिसको ऊपर एक सेफ्टीपिन से टांका हुआ था। बच्चे की उस लंगोट का पिन बाहर फेंकने पर रेल लाइन के पास वाली एक झाड़ी के कांटे में अटक गया था जिससे वह लंगोटी एक झूले की तरह बन गयी थी और उस झूले में झूलता हुआ बालक अपना अंगूठा चूस रहा था। उस नन्हे दुधमुंहे शिशु को एक

साधारण खरोंच तक भी नहीं लगी थी। उस शिशु के इस बालमुकुन्द रूप में दर्शन कर हिंगोरानी की जीवनधारा ही बदल गई। उसने निश्चय किया कि जिस परमेश्वर की परमेश्वरी शक्ति सृष्टि के कण-कण पर शासन कर रही है मैं उसी की खोज के लिए यह जीवन उत्सर्ग कर दूंगा।

प्रकृति के नैतिक उद्देश्य का परिचय जीवन के पग-पग पर मिलता है और संसार के इतिहास में ऐसे अनन्त उदाहरण हैं और महापुरुषों का जीवन इसका अकाट्य साक्ष्य है।

(ग) जो सत्ता जीवन की रक्षा करती है, जीवन के साधनों अन्न, जल, वायु आदि को उपलब्ध कराती है, जो धर्म और नीति की पोषक है। वह सत्ता अवश्य ही सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी एवं सर्वशक्तिमान होनी चाहिए अन्यथा उसका न्यायविधान चल ही नहीं सकता।

(घ) संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील या नश्वर प्रतीत होती है। सापेक्षतावाद के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक गति सापेक्ष है। यदि कुछ स्थिर वस्तु न हो तो हमें कभी गति का भान ही सम्भव नहीं हो सकता। किसी स्थिर वस्तु की तुलना में ही किसी गतिमान वस्तु की गति जानी जा सकती है। यदि सब कुछ स्थिर है तो गति का स्थान ही नहीं बचता। यदि सब कुछ गतिमान हो तो उसे गतिमान कहना भी कठिन होगा। गति की कल्पना ही स्थिरता की तुलना में होती है। हमारी धरती अपने अक्ष पर एक हजार मील प्रति घंटा की गति से घूम रही है और सूर्य के गिर्द लाखों मिल प्रति घंटा के हिसाब से गति कर रही है। किन्तु केवल धरती को देखने से उसकी गति का कोई भान नहीं होता। सूर्य तथा अन्य ग्रहों की अपेक्षा से ही धरती की दोनों गतियों का भान होता है। संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। भगवान् बुद्ध कहते हैं—all is change सब कुछ परिवर्तनशील है। यदि यह ज्ञान सत्य है तो ज्ञान का ज्ञाता कौन है। यदि शरीरधारी बुद्ध ज्ञाता है, वह तो स्वयं परिवर्तन के शिकार थे। स्वयं नदी की धारा में बहने वाला नदी की गति को कैसे माप सकता है? स्वयं शेर के मुख में शेर के दांतों के नीचे आकर शेर का कलेवा बनने वाला व्यक्ति शेर के दांतों को कैसे गिन सकता है? स्वयं परिवर्तनशील व्यक्ति सारे विश्व में परिवर्तन का साक्षी कैसे हो सकता है? सब कुछ परिवर्तनशील है उसको वही जान सकता है जो सृष्टि की परिवर्तन लीला प्रारम्भ होने से पहले भी अटल एवं अपरिवर्तनीय हो। सृष्टि लीला के मध्य भी निरन्तर अटल एवं अपरिवर्तनीय रहे और सृष्टि लीला के अन्त में भी अटल अविचल बना रहे। अचल ही चल का साक्षी एवं ज्ञाता बन सकता है। अतः परिवर्तनशील सृष्टि के पीछे कोई अटल, अविचल और अपरिवर्तनीय चरम परम सत्य अवश्य है।

(ङ) सामान्य व्यक्ति स्थूल दृष्टि से जब सृष्टि को देखता है तब उसे कोई चरम सत्ता दिखाई नहीं देती। इसलिए वह कह बैठता है कि सृष्टि में कोई अटल अविनाशी सत्ता नहीं है। यह विवेकहीन स्थूलदर्शी व्यक्ति का फूहड़ ज्ञान है। मिस्री की डली व्यक्त होने से दिखाई देती है किन्तु उसकी मिठास जिसके कारण मिस्री है वह अव्यक्त होने से स्थूल दृष्टि से दिखाई नहीं देती। किन्तु एक अन्य स्थूल इन्द्रिय जिह्वा से अनुभव की जा सकती है। शरीर स्थूल होने से दिखाई देता है किन्तु शरीर का स्वामी शरीरी स्थूल इन्द्रियों से दिखाई न देकर भी मन से अनुभव किया जा सकता है। बुद्धि अथवा विवेक से उसकी सत्ता सिद्ध हो जाती है। चरम परम सत्य स्थूल न होने के कारण स्थूल इन्द्रियों की पकड़ में नहीं आता है। किन्तु सूक्ष्म मन से मनन द्वारा उसकी अनुभूति कर सकता है। बुद्धि विवेक द्वारा उसकी सत्ता को सिद्ध करती है। मानव का विवेक कहता है कि बिना कारण के कोई कार्य नहीं हो सकता। तर्कशास्त्र का सहारा विज्ञान और दर्शन दोनों लेते हैं। विज्ञान और दर्शन दोनों एक-दूसरे से भिन्न एवं कभी-कभी विपरीत प्रतीत होते हैं। किन्तु तर्कशास्त्र का आश्रय दोनों को लेना पड़ता है। तर्कशास्त्र एक ऐसा निर्विवाद समझौतावादी पुरोहित है जो विज्ञान और दर्शन का पाणिग्रहण संस्कार करा देता है। इसलिए विज्ञान और दर्शन दोनों ही तर्क और विवेक से स्वीकार करते हैं कि सृष्टि का सृष्टा कोई परम तत्त्व अवश्य होना चाहिए।

(च) शंकराचार्य और देकार्त दोनों तर्क देते हैं कि यदि सृष्टि में कुछ भी सत् नहीं है तो संदेह पैदा होता है कि क्या मैं संदेह करने वाला स्वयं भी हूं या नहीं। संदेह संदेहकर्ता को सिद्ध कर देता है। यदि संदेहकर्ता ही नहीं तो संदेह पैदा ही कैसे हो सकता है? जितना-जितना मैं अपने अस्तित्व में संदेह करता जाता हूं उतना-उतना अधिक मेरा अस्तित्व स्वत:सिद्ध होता जाता है। अत: सत् की सत्ता का विवेकपूर्ण और तर्कसम्मत आधार मिल जाता है। स्वामी विवेकानन्द भी कहते हैं प्राचीनकाल में नास्तिक उसे कहा जाता था जो ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करता था पर मैं उसे नास्तिक मानता हूं जो स्वयं की सत्ता में विश्वास नहीं करता। यह विचित्र बात है कि संसार का सबसे बड़ा नास्तिक भी अपनी सत्ता से इनकार करने को प्रस्तुत नहीं होता।

(छ) महात्मा गांधी को एक व्यक्ति ने कहा, मैं ईश्वर में विश्वास नहीं करता। गांधीजी ने कहा कि क्या सच है कि तुम ईश्वर में विश्वास नहीं करते। उसने कहा, हां! यह सच है कि मैं ईश्वर में विश्वास नहीं करता। गांधीजी ने कहा, यह सच ही तो परमेश्वर है।

(ज) डॉ. राधाकृष्णन् को स्टालिन ने कहा, हम नास्तिक हैं। हम ईश्वर को नहीं मानते। राधाकृष्णन् ने कहा कि मैं सिद्ध कर सकता हूं कि आप ईश्वर को मानते हैं। उन्होंने स्टालिन से पूछा क्या आप चाहते हैं कि आपके अधीनस्थ

अधिकारी आप से सच बोलें या झूठ बोलें? स्टालिन ने कहा, मैं चाहता हूं सच बोलें, झूठ बोलने वाले को मैं सूली पर टंगवा दूं। राधाकृष्णन् ने पूछा, क्या आप मानवता का कल्याण चाहते हैं? स्टालिन ने कहा, हम गरीबों के कल्याण के लिए ही संघर्ष कर रहे हैं। राधाकृष्णन् ने पूछा, क्या आप अपने देश को सुन्दर बनाना चाहते हैं या फूहड़ और कुरूप? स्टालिन ने उत्तर दिया हम अपने देश को सुन्दरतम देश बनाना चाहते हैं। राधाकृष्णन् ने तर्क दिया कि तब आप ईश्वर में विश्वास करते हैं। क्योंकि ईश्वर सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् ही है। इससे स्टालिन की भारतीय दर्शन में बड़ी रुचि जगी और वह डॉ. राधाकृष्णन् को बार-बार अपने पास बुलाकर उनसे गीता का तत्त्वज्ञान सुनता था।

इस प्रकार परम सत्य की सत्ता विज्ञान और दर्शन दोनों को माननी पड़ती है। यदि वैज्ञानिक बिना सृष्टा के सृष्टि मान लें तो उसका कथन अवैज्ञानिक, तर्कहीन हो जाएगा। यह अलग बात है कि वह उस सत्य का स्वरूपनिर्धारण करने में कौन-सा दुराग्रह रखता है।

(झ) परम सत्य की सत्ता स्थापित करने के पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि परम सत्य एक-दो, तीन अथवा अनेक है। एकतत्त्ववादी मानते हैं कि परम सत्य एक ही है। एकमेव अद्वितीयम् है। द्वैतवादी मानते हैं परमतत्त्व एक नहीं दो हैं—जड़ और चेतन। त्रेतवादी मानते हैं कि परमतत्त्व तीन हैं—जीव, जगत् और ब्रह्म। न्याय दर्शन, आर्य समाज आदि इस सिद्धान्त को मानते हैं। प्रकृति सत् है अर्थात् उसकी सत्ता है किन्तु उसमें चेतना और आनन्द का अभाव है। जीव सत् और चित् दोनों है। उसकी सत्ता भी है चेतना भी है। किन्तु उसमें आनन्द का अभाव है। इसलिए आनन्द के लिए तरसता रहता है। ईश्वर में सत्, चित् और आनन्द तीनों गुण हैं। सृष्टि की सर्वोच्च सत्ता भी वही है। सृष्टि की समस्त चेतना का सबसे प्रथम कारण एवं पूर्ण भण्डार भी वही है। तथा पूर्ण आनन्द का स्वरूप भी वही है। अतः जीव जो प्रकृति और परमेश्वर के बीच में खड़ा है उसे प्रकृति की ओर न जाकर परमेश्वर की ओर जाना चाहिए। प्रकृति की ओर जाने से वह भोगी और रोगी बनता है और परमेश्वर की ओर जाने से वह योगी बनता है। प्रकृति के वश में हो जाने से वह चेतना से जड़ता की ओर जाता है और परमेश्वर की ओर जाने से वह सच्चिदानन्द की उपलब्धि-लाभ करता है। मानव की आध्यात्मिक साधना के लिए त्रेतवाद की सीढ़ी बड़ी उपयोगी है। इससे दर्शन की तिपाई के तीनों पदों का परस्पर सम्बन्ध भी स्पष्ट होता है। अतः अद्वैतवादी, द्वैतवादी, त्रेतवादी सभी प्रारम्भ में प्रकृति, जीव और ब्रह्म के भेद और उनकी तीन पृथक् सत्ताओं से विवेचन शुरू करते हैं। द्वैतवादी आगे चलकर दो की सत्ता मानता है। जीव और ब्रह्म दोनों चैतन्य हैं। प्रकृति जड़ है। इसलिए सांख्य प्रकृति-पुरुष इन दो सत्ताओं से

संतोष मान लेता है। अद्वैतवाद सर्वोच्च स्तर पर पहुंचकर केवल एक ही सत्ता ब्रह्म सत्यम् मानता है और त्रेत का द्वैत में लय और द्वैत का अद्वैत में लय मानता है।

कई विचारक बहुतत्त्ववादी या अनेकान्तवादी भी हैं। भारत का जैन दर्शन अनेकान्तवादी है। उसका कथन है कि प्रत्येक आत्मा मुक्त होने पर अलग-अलग परमात्मा बन जाता है।

आत्मा एक है अथवा अनेक इस पर भारत के दार्शनिकों में भी विवाद चलता रहता है।

भारतीय दर्शन ने व्यक्त रूप में जो अनेकता है उसके पीछे की छिपी हुई एकता को पहचानने की चेष्टा की है। शंकराचार्य के मत में आत्मा तो एक ही है जिसे परमात्मा या ब्रह्म भी कह सकते हैं। किन्तु जो पारमार्थिक स्तर पर एक है वह व्यावहारिक स्तर पर अनेक जीवात्माओं के रूप में खेल करता रहता है। आत्मा है चिदाकाश और जीवात्मा है चिदाभास। इसमें चेतना के आभास द्वारा ही परम अपनी लीला कर रहा है। जब तक अन्त:करण की सत्ता है तब तक मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार अपना नाटक खेलते रहते हैं। अंत:करण से युक्त आत्मा ही जीवात्मा कहलाता है। **जब अन्त:करण संकल्प-विकल्प से रहित एवं पूर्णतया निर्मल हो जाता है तब अन्त:करण के स्वच्छ दर्पण में ब्रह्मज्योति का सूर्य प्रकाशित-प्रतिबिम्बित होने लगता है। (अन्त:करण को मांजना ही सबसे बड़ी साधना है) जब अन्त:करण में ब्रह्मज्ञान प्रकाशित हो जाता है तब जीव जीवन्मुक्त बन जाता है।** जब तक कुछ प्रारब्ध कर्म शेष है तब तक वह शरीर को धारण किये रहता है किन्तु शरीर की कारा से मुक्त रहता है। जब शरीर शांत हो जाता है तब ऐसा जीवन्मुक्त महापुरुष परामुक्ति का लाभ करता है। तब जीवत्व को त्यागकर ब्रह्मत्त्व का लाभ करता है। उपनिषदों में सूर्य और धरती पर करोड़ों घटों में सूर्य के प्रतिबिम्ब का दृष्टान्त दिया गया है। अन्त:करण के शांत, निर्मल एवं प्रभु की ओर उन्मुख होने से उसमें परम तत्त्व का पूरा प्रतिबिम्ब आएगा।

अन्त:करण में प्रकृति के भोग बसे रहे तो जीव बंधा हुआ है। अन्त:करण में प्रभु का प्रकाश आने लगे तो साधक बन गया और अन्त:करण पूर्ण शुद्ध हो जाने पर परमेश्वर का पूर्ण प्रकाश आ जाने से जीवन्मुक्त भागवत पुरुष बन जाता है। अन्त:करण का लय हो जाने पर जीव का जीवत्व समाप्त होकर ब्रह्मरूप हो जाता है। इस तरह अन्त में एकतत्त्व की ही सत्ता बचती है। आर्यसमाजी विचारक भी चाहे तीन सनातन सत्तायें मानते रहते हैं किन्तु वे सर्वोच्च पद परमेश्वर का ही मानते हैं। सर्वोच्च एक ही हो सकता है अनेक नहीं। हिमालय की सर्वोच्च चोटी एक ही है। प्रकृति एवं जीव को सीमित अर्थ में व्यावहारिक स्तर तक सत् माना

जा सकता है। किन्तु, वही विश्व की चरम परम सत्ता नहीं माने जा सकते हैं। यदि प्रकृति परम पुरुष के समान ही महत्ता रखती है तो प्रकृति को छोड़कर परमेश्वर की उपासना करने की आवश्यकता ही नहीं बचती। यदि जीव ही परम सत्य हो तो जीवत्व से मुक्त होकर ब्रह्मत्व पाने की साधना का कोई अर्थ ही नहीं बचता। जब शंकराचार्य भी अपने सिद्धान्त का कथन करते हैं तो कहते हैं—

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।।

जो करोड़ों ग्रंथों में कहा गया है उसे मैं आधे श्लोक में कह दूंगा। केवल ब्रह्म ही सत्य है ब्रह्म के बिना सब जगत् मिथ्या है और जीव तत्त्वतः अपने स्वरूप में ब्रह्म ही है। ब्रह्म से पृथक् कोई अन्य नहीं। इसमें सबसे प्रथम परम चैतन्य ब्रह्म की सत्ता निरूपित की गई है। फिर ब्रह्म के अतिरिक्त शेष जड़ जगत् को मिथ्या कहा गया है। फिर जीव को चेतना की दृष्टि से ब्रह्म का ही रूपान्तर माना गया है और शुद्धात्मा को साक्षात् ब्रह्म ही माना गया है। ब्रह्म से पृथक् कोई दूसरी सत्ता हो ही नहीं सकती।

सृष्टि की विश्वव्यापी (सैद्धान्तिक) एकरूपता को देखकर यही निश्चय होता है कि सारी सृष्टि का नियामक कोई एक सर्वशक्तिमान तत्त्व होना चाहिए जिसके शासन को प्रकृति सदा मानती है। आग सदा जलाती है, जल सदा गीला करता है, वायु सदा सुखाता है, पानी सदा नीचे की ओर बहता है। अम्ल सदा अपने स्पर्श मात्र से नीले लिटमस को लाल कर देता है। जड़ जगत् में प्रकृति की एकरूपता के अतिरिक्त नैतिक जगत् में भी किसी महान् सत्ता का विश्वव्यापी नैतिक शासन का अनुभव होता है। बुरे का फल अन्ततः बुरा ही और भले का फल भला ही है। इससे सिद्ध होता है जड़ जगत् में और नैतिक जगत् में किसी एक सत्ता का शासन है। तीन या अनेक का नहीं। भिन्न-भिन्न देशों के देशव्यापी नियम अन्य देशों के नियमों से भिन्न एवं कई बार विरोधी भी होते हैं। यदि भारत में सड़क की दायीं ओर चलना या मोटरगाड़ी को दायीं और चलाना अपराध है तो पाकिस्तान में बायीं ओर चलना अपराध है। यदि हिन्दुओं के लिए दूसरा विवाह अपराध है तो मुसलमानों के लिए चार विवाह तक न्यायसंगत धर्म है, आदि।

यदि विश्व में एक से अधिक सत्ताओं का शासन हो तो एक शासन के वैज्ञानिक सिद्धान्त एवं नैतिक नियम दूसरे शासन के वैज्ञानिक सिद्धान्त एवं नैतिक नियमों से भिन्न एवं परस्पर विरोधी भी हो सकते हैं। इस प्रकार की दो सत्ता से सारे जगत् में अव्यवस्था फैल जाएगी। यदि एक घर में ही माता का अनुशासन, पिता का अनुशासन परस्पर भिन्न एवं विरोधी हो जाए तो परिवार कुछ ही दिनों में उजड़ जाएगा। सृष्टि को वेद में एक काव्य से उपमा दी गई।

पश्य देवस्य काव्यम्
न ममार न जीर्यति।

अर्थात् देवता के इस सृष्टि रूप काव्य को तो देखो न ही मरता है न ही पुराना पड़ता है। हम सृष्टि को अंग्रेजी में Universe कहते हैं। इसके अनुसार एक शक्ति का काव्य। काव्य में शब्द नपे-तुले एवं संतुलित होते हैं, एक भी फालतू शब्द नहीं होता। सृष्टि में भी कोई भी वस्तु निरर्थक नहीं है। मानव के श्वास-प्रश्वास द्वारा छोड़ी गई जहरीली गैसों, नाइट्रोजन तथा कार्बन डाइऑक्साइड को वृक्ष, वनस्पति पी जाते हैं। यह गैस मानव के लिए विषैली पर वृक्षों के लिए जीवनदायी है। वृक्ष जिस ऑक्सीजन को अपने लिए बेकार समझ कर बाहर फेंकते हैं, वही मनुष्य एवं अन्य जीवों के लिए जीवनदायी है। मनुष्य अपना मैला फेंकता है वही खेत के लिए उत्तम आहार (खाद) बन जाता है। धरती कृषि रूप में जो अन्न, शाक-सब्जियां, फल बाहर फेंकती है वही मनुष्य के लिए भोजन बन जाता है। इस प्रकार सृष्टि में प्रत्येक वस्तु संतुलित एवं परस्पर उपयोगी है। कुछ भी निरर्थक नहीं है। इसलिए इसे काव्य कहा गया है। सृष्टि रूपी काव्य के रचयिता को कवि कहा गया है।

यदि एक से अधिक सत्ताओं का शासन होता तो सृष्टि को Universe के स्थान पर triverse कहते। जब Universe एक है तो Universe का सृष्टि का नियामक भी एक ही मानना पड़ेगा।

परम सत्ता का स्वरूप जड़ या चेतन

जब यह निश्चय हो गया कि सृष्टि का चरम सत्य एक ही है या दो से अधिक नहीं है तब फिर प्रश्न उठता है कि परम सत्ता का स्वरूप क्या है? वह जड़ है अथवा चेतन? जड़वादी, पदार्थवादी, प्रकृतिवादी विचारक मानते हैं कि सृष्टि का अन्तिम सत्य जड़ पदार्थ ही है। इस सिद्धान्त को जड़वाद या भौतिकवाद कहा जाता है। भारत में चार्वाक इसका सबसे प्रबल समर्थक हुआ।

पश्चिम में लॉक, ह्युम, बेन्थम, सिजविक, न्यूटन, डार्विन, स्पेन्सर, कार्लमार्क्स आदि अनेक भौतिकवादी एवं इन्द्रिय सुखवादी दार्शनिक हुए हैं।

विचारकों का एक दूसरा बड़ा समूह है जो यह मानता है कि सृष्टि का चरम परम सत्य जड़ पदार्थ न होकर चेतन तत्त्व है। इसके समर्थक वेद-उपनिषदों के ऋषि व्यास, वाल्मीकि, वसिष्ठ, कृष्ण, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, नानक, कबीर, विवेकानन्द, दयानन्द, रामतीर्थ, अरविन्द, रवीन्द्र, राधाकृष्णन् आदि और पश्चिम में बर्कले, टेलर, लाइबनित्ज, स्पीनोजा, हिगेल, ब्रेडले आदि अनेक विचारक इसके समर्थक हैं। इस सिद्धान्त को अध्यात्मवाद कहते हैं।

अध्यात्मवाद और भौतिकवाद का तुलनात्मक अध्ययन

भौतिकवाद	अध्यात्मवाद
1. मृत, अजीव, अचेतन।	1. अमृत, सजीव, सचेतन।
2. जड़ अन्य जड़पदार्थों को भी नहीं जानता। एक पत्थर अन्य पत्थरों, हीरों को नहीं जानता-पहचानता। एक मुर्दा अन्य मुर्दों को नहीं पहचानता।	2. चेतन, चेतन एवं अन्य जड़ पदार्थों को जानता है— (क) सब खनिज पदार्थों को मनुष्य ने जाना। (ख) सब रसायन, औषधि, धातु को मनुष्य ने जाना। (ग) सब वनस्पतियों को मनुष्य ने जाना। (घ) सब कीट-कीटाणु को मनुष्य ने जाना। (ङ) सब पशु-पक्षी को मनुष्य ने जाना। (च) सब मनुष्यों को मनुष्य ने जाना। (छ) जगत् को मनुष्य ने जाना।
3. जड़ अन्य जड़ों के परस्पर सम्बन्ध को नहीं जानता।	3. चेतन एक जड़ के द्रव्यों, जड़ों से सम्बन्ध को जानता है। पेट्रोल, अग्नि, चूना, हलदी, एसिड-लिटमस।
4. जड़, जड़ तथा चेतन के सम्बन्ध को भी नहीं जानता। खेत मालिक को नहीं जानता।	4. चेतन (क्षेत्रज्ञ) जड़ के साथ चेतन के सम्बन्ध को जानता है।
5. जड़ मालिक को नहीं जानता।	5. चेतन मालिक को पहचानता है।
6. जड़ लक्ष्य को नहीं जानता।	6. चेतन लक्ष्य को पहचानता है।
7. जड़ स्वयं को नहीं जानता।	7. चेतन स्वयं को भी जान सकता है।

इस प्रकार जड़-चेतन दोनों परस्पर एक-दूसरे के विपरीत हैं। अब प्रश्न है कि विश्व में सर्वोच्च सत्ता एक है तो हमें यह निर्णय करना पड़ेगा कि क्या वह जड़ है या चेतन। या तो जड़ चेतन की व्याख्या करे या चेतन जड़ की व्याख्या करे तभी यह फैसला हो सकता है कि दोनों में अन्तिम सत्ता किस-की है? जड़ तो स्वयं ज्ञानशून्य जड़ ही है। वह स्वयं को भी नहीं जानता, अन्य जड़ों को और चेतन को भी नहीं जानता। अत: विश्व की व्याख्या करने में असमर्थ है। चेतन जड़ को भी जानता है, दूसरे चेतन को भी जानता है। जड़ और चेतन के सम्बन्ध को जानता है और स्वयं को जानता है। अत: चेतना ही अन्तिम सत्ता की व्याख्या कर सकती है।

भौतिक दृश्य का अध्ययन करता है अध्यात्मवाद दृष्टा का

अधिकांश वैज्ञानिक अपना चिन्तन भौतिकवाद तक ही सीमित रखते हैं। वे विज्ञान का अध्ययन इस पूर्वाग्रह से प्रारम्भ करते हैं कि जड़ पदार्थ ही परम सत्य है। यदि जड़ परम सत्य है तो वह चेतन की व्याख्या करके दिखाए। इसके विपरीत यदि चेतन ही परम सत्य है तो वह जड़ की व्याख्या करके दिखाये। हम देखते हैं कि जड़ तो स्वयं अपनी ही व्याख्या नहीं कर सकता वो बेचारा चैतन्य की व्याख्या क्या करेगा। दूसरी ओर चेतन समस्त जड़ सृष्टि की, जीव सृष्टि की, नैतिक चेतना, आध्यात्मिक चेतना की व्याख्या करने में समर्थ है। सृष्टि के क्रम विकास में सबसे नीचा स्तर पत्थर या खनिज पदार्थ का होता है। पत्थर में सत्ता है जीवन नहीं, मानसिक चेतना नहीं, तर्क चेतना नहीं, नैतिक चेतना नहीं और आध्यात्मिक चेतना नहीं है। जब चेतन वैज्ञानिक ने पत्थरों और खनिज पदार्थों का अध्ययन किया तो खनिज जगत् की प्रत्येक वस्तु को नाम मनुष्य ने ही दिया। भिन्न-भिन्न खनिजों का अध्ययन मनुष्य ने ही किया। Geology नामक पूरा विषय चैतन्य मनुष्य ने ही निर्माण किया। उसने खनिजों को धातु-अधातु में बांटा। खनिजों से ऊपर का स्तर वनस्पति का है। वनस्पति की सत्ता है। वनस्पति में सत्ता है। जीवन भी है। इसमें मानसिक चेतना घन सुषुप्तिवस्था में है। तर्क चेतना, नैतिक चेतना और आध्यात्मिक चेतना नहीं है। समस्त वनस्पतियों का अध्ययन, गुण विश्लेषण एवं नामकरण चेतन मनुष्य द्वारा ही हुआ।

वनस्पति जगत् से ऊपर पशु-पक्षी जगत् का स्तर है। इन प्राणियों में सत्ता है, जीवन है, मानसिक चेतना है। किन्तु बौद्धिक-नैतिक और आध्यात्मिक चेतना नहीं है। इन पशु-पक्षियों का अध्ययन भी चेतन मनुष्य ने ही किया।

पशु-पक्षी से ऊपर मनुष्य का स्तर है। जिसमें सत्ता है। जीवन, मानसिक चेतना, बौद्धिक-नैतिक व आध्यात्मिक सब प्रकार की चेतना है। मनुष्य का भी सर्वांगीण अध्ययन चेतन मनुष्य द्वारा ही सम्भव हुआ है। इस प्रकार जब सृष्टि के रंगमंच पर चेतन मनुष्य प्रकट हुआ तो उसकी चेतना के दृष्टिपात मात्र से खनिज, वनस्पति, पशु-पक्षी एवं मनुष्य सबका रहस्य खुल गया। यह अति विचित्र और विस्मयकारी बात है कि जीवित वैज्ञानिक अपनी चेतना के सहारे पत्थर से लेकर मनुष्य तक सारी सृष्टि को जान पाता है किन्तु जिस चेतना के सहारे उसने समस्त जड़ जगत् का अध्ययन किया वह अपने अन्तिम निष्कर्ष में चेतन के स्थान पर जड़ को ही परम सत् घोषित करने लगता है। यदि जड़ सत् होता तो जड़ ही समस्त सृष्टि की व्याख्या कर लेता। तब चैतन्य मनुष्य की आवश्यकता ही न पड़ती और भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के विवाद सिद्धान्त भी न बनते। यदि सृष्टि में मानव चेतना का प्रकाश न हुआ होता तो सृष्टि की क्या दशा होती इसकी कल्पना भी

भयावह लगती है। जिस चेतना के सहारे सब कुछ जाना उस चेतना को असत् मानना मानव-जाति की सारी ज्ञानसाधना का घोर तिरस्कार है। यह उस जड़मूर्ख जैसा खेल है जो वृक्ष की जिस टहनी पर बैठा है उसी को काटने में शेखी बघार रहा है। चोर चोरी करते समय, सेंध लगाते समय यह जानने का प्रयास करता है कि घर के लोग जाग रहे हैं या सो गए। यह भी जानने का प्रयास करता है कि आभूषणों का बक्सा किस कमरे में पड़ा है और कौन-सी दीवार अंधेरी गली की ओर लगती है। यह सब उचित जानकारी लेकर ही वह चोरी या सेंधमारी करता है। और कहता है कि उसे किसी ने जाना नहीं। जिस ज्ञान के सहारे वह चोरी, सेंधमारी करता है वह ज्ञान ही तो ब्रह्म है। उससे छिपाकर कोई कर्म कैसे हो सकता है। इसी प्रकार बिना चेतना के खनिज विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, जीव विज्ञान का अस्तित्व ही न होता। वैज्ञानिक केवल अपनी हठधर्मिता के कारण सारे ज्ञान के मूल चेतन तत्त्व का तिरस्कार कर जड़ को अन्तिम सत्ता मान लेता है। चेतना ही ज्ञान-विज्ञान का मूलस्रोत है। बिना चेतना के सारी सृष्टि शून्य होती। सारे पुस्तकालय एवं विश्वविद्यालय कंगाल ही न होते वरन् उनका अस्तित्व ही न होता। न ज्ञाता होता, न ज्ञान होता, न ज्ञेय होता। न मनुष्य, न पशु-पक्षी न वनस्पति और जड़ पदार्थ भी होता या न होता इसका कोई ज्ञान ही न होता। ऐसे जड़ पदार्थों के मुर्दाघाट का साक्षी कौन होता। वैज्ञानिक जीवित एवं चेतन है और वह चेतना के सूर्य द्वारा सारे विश्व को, जड़-चेतन को प्रकाशित करता है और अन्तिम निष्कर्ष यह निकालने लगता है कि विश्व की अन्तिम सचाई जड़ है। चेतन मानव ही जड़ पदार्थ को जानता है, विश्लेषण करता है। Atom को तोड़ता है और उसके टुकड़े का नामकरण करता है। उसमें से प्रकट होने वाली ऊर्जा का अध्ययन करता है और अन्त में जड़ पदार्थों को ही सृष्टि का स्वामी घोषित कर देता है। यह वैसे ही है जैसे महाभारत के महायुद्ध में 18 अक्षौहिणी सेना को जीतने वाले वीर शिरोमणि की विजय का सारा श्रेय जंगल की उस बांस को दिया जाए जिससे उसका धनुष बना था।

कुछ विचारक सृष्टि की अन्तिम सत्ता का स्वरूप जड़-चेतन दोनों को मानते हैं। यदि सत्तायें दो हैं तो अव्यवस्था फैल जाएगी। यदि एक ही सत्ता में दोनों गुण हैं तो परस्पर विरोधी प्रतीत होंगे। अतः इस समस्या का सुलझाव भी महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में जड़ चेतन की व्याख्या करने में असमर्थ है। जड़ चेतन को पैदा नहीं कर सकता, जान नहीं सकता, उसकी व्याख्या नहीं कर सकता। इसके विपरीत चेतन जड़ को पैदा करता है, उसे जानता और व्याख्या भी करता है। महामना मालवीयजी के मन में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का संकल्प पैदा हुआ और एक दिन वह चेतन का संकल्प एक विराट् विश्वविद्यालय के रूप में निर्मित हो गया। कोई भी यंत्र बनाने वाला यंत्री, आविष्कार करने वाला आविष्कारक, सुन्दर सृष्टि

करने वाला कलाकार, भवन निर्माण करने वाला वास्तुकार पहले अपनी चेतना के सहारे अपने मन में ही रचना करता है और बाद में वही रचना स्थूल पदार्थ के रूप में निर्माण की जाती है। इसी प्रकार ब्रह्म के संकल्प से सृष्टि का निर्माण होता है। जैसे स्वप्न काल में मनुष्य के संकल्प से नया संसार बन जाता है उसी प्रकार ब्रह्मा के संकल्प से सारी सृष्टि पैदा हो जाती है। जीव का स्वप्न अल्पकालीन है, ब्रह्म का स्वप्न व्यापक है इसलिए सृष्टि अधिक देर तक चलती दिखाई देती है। जैसे सुषुप्तिकाल में स्वप्न सृष्टि लय हो जाती है उसी प्रकार प्रलयकाल में ब्रह्मा की सृष्टि भी लय हो जाती है। यदि ये ठोस पदार्थमयी सृष्टि सदा सत्य होती तब कभी लय हो ही नहीं सकती थी। जैसे स्वप्नकाल में भ्रान्ति होती है वैसे ही अज्ञानग्रस्त जीवों को जाग्रत् काल में भी भ्रान्ति होती है। सेठ अपने विदेश से पढ़कर आने वाले बेटे के लिए मुम्बई की धर्मशाला में जाता है। बेटे का विमान पहले आ जाने से वह भी उसी धर्मशाला में ठहरा हुआ है। सेठ भी मैनेजर से धर्मशाला में कमरा मांगता है। कमरा खाली नहीं होने से सेठ मैनेजर को मोटी रकम देकर वही कमरा खाली कराता है जिसमें लड़का ठहरा हुआ है। मैनेजर लड़के को ठंड में बाहर निकाल देता है। उससे वहां न्यूमोनियाग्रस्त होकर उसका शरीर शांत हो जाता है। किन्तु उस समय तक सेठ तनिक परवाह नहीं करता। जब बाद में नाम-पते से भेद खुलता है तब सेठ छाती पीटकर पछताता है—हाय! जिस लड़के का प्रेम से स्वागत करने आया था। मैंने उसी को भ्रान्ति में धक्के मारकर निकलवा दिया और उसकी मृत्यु का कारण बना। हमारी मन की भ्रान्ति से ही मित्र-शत्रु का संसार निर्माण होता है। मन की मोह ममता से ही वस्तुओं एवं व्यक्तियों को अपना-पराया मानते रहते हैं। इसी का नाम संसार है। यह संसार हमारी चेतना से ही निर्मित हो रहा है। मन का संकल्प रोकते ही संसार लय हो जाता है।

योगवासिष्ठ में महर्षि वसिष्ठ राम को उपदेश कर रहे हैं—

चित्तमेव ही संसारो रागादिक्लेशदूषितम्।

अर्थात्, रामजी! राग-द्वेष आदि दोषों से दूषित हुआ यह चित्त ही तो संसार है। एक क्षण के लिए संकल्प रोक कर तो देखो संसार लय है। प्रतिदिन सुषुप्तिकाल में संकल्प रुक जाने से संसार का लय हो जाता है। जाग्रत्काल में पुनः संकल्प-विकल्प बनने से पुनः संसार बन जाता है। सुषुप्ति अवस्था में चित्त का संकल्प-विकल्प रुकने से हमें बड़ा सुख मिलता है। हम अज्ञात रूप में अपनी आत्मा की गोदी में चले जाते हैं और दिन भर के थके-हारे शरीर को नवचेतना, नवप्राण, नवस्फूर्ति मिल जाती है। यह शक्ति कहां से आती है? निश्चय ही किसी जड़ पदार्थ से नहीं। उस काल में न व्यायाम, न भोजन, न औषधि खाते हैं, न ताकत की दवा लेते हैं। वरन् इन सबको त्याग देते हैं। मानव की सारी शक्ति का स्रोत

उसकी सुषुप्ति में छिपा पड़ा है। जाग्रत्काल में उस शक्ति का व्यय और क्षय करते हैं। अत: जड़ जगत् में काम के लिए जो शक्ति मिल रही है वह तो हमारे चित्त के शांत होने से ही प्राप्त होती है। सभी ऋषियों, ज्ञानियों, कलाकारों, वैज्ञानिकों, दार्शनिकों और कर्मवीरों की समस्त कृतियों एवं उपलब्धियों का मूलस्रोत शांत मन की निर्मल चेतना ही है। अत: जड़ और चेतन में से चेतन ही अधिक मौलिक, आधारभूत एवं शक्तिशाली है।

स्वप्नकाल में चेतना मन के अतृप्त संकल्पों की पूर्ति के लिए अपना कल्पना का संसार रचती है। जाग्रत्काल में चेतना राग-द्वेष से दूषित चित्त द्वारा मित्र-शत्रु, अपने-पराये का संसार रचती है। सुषुप्तिकाल में चेतना जाग्रत् के 18 घंटे के परिश्रम के लिए शक्ति उपार्जित करती है।

शांत ध्यानावस्था में चेतना नये रहस्य, नए विचार और नए आविष्कार करने की मानसिक तैयारी करती है। सुषुप्ति में संकल्प-विकल्प रुक जाने से सारा जड़ जगत् लय हो जाता है। समाधिवस्था में चित्तवृत्तियों का निरोध कर देने से बाहर का संसार लय हो जाता है। चेतना पूर्णतया शांत एवं शुद्ध हो जाने से पूर्ण चैतन्य परब्रह्म परमेश्वर की अखण्ड अनुभूति प्राप्त होती है। यही ब्राह्मीस्थिति है।

जिसको मित्र या अपना मानते हैं उसके लिए शक्ति, साधन, धन का व्यय करना पड़ता है। और जिसे शत्रु मानते हैं उसके लिए भी बहुत बड़ा व्यय करना पड़ता है, सेना का व्यय, हथियारों का व्यय, विमानों का व्यय आदि। प्रत्यक्ष युद्ध में एक-दूसरे व्यक्ति या देश के सर्वनाश के लिए मनुष्य अपनी सारी शक्ति और पूंजी स्वाहा करने लग जाता है। जब किसी पंच, पंचायत या विश्व संस्था के द्वारा प्रत्यक्ष युद्ध रोक दिया जाता है तब भी लड़ने वाले व्यक्तियों या राष्ट्रों में मानसिक युद्ध जारी रहता है। इसे शीतयुद्ध या Cold war कहते हैं। इस तरह दिन भर के (संकल्प-विकल्प के) संघर्षों में लगे हुए व्यक्ति के अधूरे संकल्प शय्या में विश्राम करने के समय भी शांत नहीं होते हैं। राष्ट्रों के शीतयुद्ध के समान मन की समरभूमि में स्वप्नों के रूप में आकर अपनी ईर्ष्या-द्वेष की लीला करते रहते हैं। व्यय-पूर्ति का साधन या स्रोत चाहिए। पूर्ति का साधन भगवान् ने यह रखा कि जबरदस्ती चित्त को सुला दिया। जबरदस्ती सुलाने से सुख तो मिला किन्तु उस सुख के स्रोत का ज्ञान नहीं हुआ। यह वैसे ही हुआ जैसे कोई हमारी आंखों पर पट्टी बांधकर किसी अंधेरी कोठरी में ले जाए और वहां हमें चुपचाप बहुत स्वादिष्ट लड्डू खिलाकर वापस पहुंचा दे। हमें लड्डू बहुत मीठा लगा परन्तु लड्डू खिलाने वाले स्रोत हाथ का दर्शन नहीं हुआ। सुषुप्ति काल में सत् और आनन्द की अनुभूति तो होती है किन्तु चेतना के घन-सुषुप्तिवस्था में रहने के कारण उस आनन्दमयी सत्ता का दर्शन नहीं हुआ। सुषुप्ति के आनन्द को जागृत चेतना के

साथ भोगना चाहें तो हमें शांत मन से ध्यान, समाधि में बैठने का अभ्यास करना चाहिए। ध्यान-समाधि के बाद धीरे-धीरे ज्ञान समाधि की अवस्था आ जाती है जिससे मनुष्य की चेतना की तार सदा परम चेतना से जुड़ी रहती है और वह स्थितप्रज्ञ बनकर जीवन के सब कर्तव्य निभाता रहता और बाह्मीस्थिति से भी नीचे नहीं गिरता।

सुषुप्ति तमोगुणी समाधि है। सविकल्प समाधि रजोगुणी समाधि है। निर्विकल्प समाधि सतोगुणी है। क्योंकि उसमें शुद्ध प्रकाश ही आ जाता है। संकल्प-विकल्प शांत हो जाते हैं और योग समाधि वाला अपने कक्ष में बैठकर आंख मूंद करके ही समाधि लगा सकता है। पर ज्ञान समाधिवान जीवन के सब कर्तव्य करता हुआ निरन्तर भगवान् से जुड़ा रहता है। इसे सहज समाधि भी कहते हैं। सम=भगवान्, धि=बुद्धि अतः भगवान् में बुद्धि लगी रहे सभी कर्तव्यों का पालन भी होता रहे। इस प्रकार सृष्टि का अन्तिम तत्त्व चेतन ही है।

बाहर के स्थूल जगत् और पंच भौतिक संसार को पूर्णतया उपेक्षित नहीं किया जा सकता। इसे पूर्णतया मिथ्या मान लेने से मानव के पास कर्तव्य और नैतिकता के लिए तर्कसम्मत आधार ही नहीं बचता। इसलिए कुछ दार्शनिकों का यथार्थवादी दृष्टिकोण से आग्रह है कि प्रकृति के पंच भौतिक जगत् को असत् न मानकर सत् माना जाए। इस विषय में जगत् की व्यावहारिक कठिनाई और बात है और दार्शनिक कठिनाई और बात है। जड़ और चेतन दो तत्त्व मानने से सृष्टि में दो अम्ली का दोष हो जाएगा। जड़ जगत् को मिथ्या मानने से नीतिशास्त्र के लिए तर्कसम्मत आधार नहीं बचेगा और नैतिकता आध्यात्मिकता के लिए परम अनिवार्य आधार है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए शंकराचार्य ने व्यावहारिक स्तर और पारमार्थिक स्तर का विचार दिया है। व्यावहारिक स्तर पर जगत् की सत्ता है किन्तु पारमार्थिक स्तर पर केवल शुद्ध चैतन्य के अतिरिक्त किसी अन्य की सत्ता नहीं बचती है। प्रकृति यदि शक्ति है तो उसे व्यावहारिक सत्ता मानकर उसका सदुपयोग होना चाहिए इसमें कोई संदेह नहीं है। किन्तु शक्ति सदा किसी शक्तिमान की शक्ति होती है। प्रकृति पुरुष पर निर्भर है। माया महेश्वर के अधीन है, लक्ष्मी सदा नारायण के चरणों में है। शक्ति शिव की उपासिका है।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।। 9/10, गीता

प्रकृति जगत् की रचना करती है किन्तु किसी सर्वशक्तिमान के नियंत्रण में रहकर ही। अतः जिसके वश में प्रकृति भी रहती है उस मायावशवर्ती महेश्वर को सर्वोच्च सत्ता मानना ही युक्तिसंगत है। प्रकृति को कहीं पुरुष की सहचरी और कहीं उसकी आज्ञावशवर्ती दासी कहा गया है। सम्राट् को छोड़कर दासी की वंदना

करना भी उचित प्रतीत नहीं होता। सती नारी विनय में अपने आपको स्वामी की दासी वर्णन करती है। यदि प्रकृति को परम पुरुष की रानी भी माना जाए तो भी वह रानी के अपने गौरव के लिए राजा के पद पर पूर्णतया अवलम्बित है। रानी राजा के कारण ही रानी है। यदि राजा ही न हो उसे रानी कौन कहेगा। अमेरीका के राष्ट्रपति केनेडी की पत्नी को तभी तक राजकीय सम्मान मिलता था जब तक राष्ट्रपति केनेडी जीवित था। पति के स्वर्गवास के पश्चात् उसे कौन पूछता है। रानी का गौरव राजा के पद पर अवलम्बित है। उसी प्रकार प्रकृति की सत्ता एवं महत्ता परमेश्वर की सत्ता एवं महत्ता पर पूर्णतया अवलम्बित है।

शक्ति और शक्तिमान एक-दूसरे से पृथक् दो अलग तत्त्व नहीं माने जा सकते। नभ से उसकी नीलिमा को अलग कौन कर सकता है, अग्नि से ताप, जल से शीतलता, आकाश से व्याप्ति अलग हो ही नहीं सकते। अग्नि का ताप अग्नि के ही कारण है, जल की शीतलता जल के ही कारण है। चीनी की मिठास चीनी के कारण ही है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउं सीता राम पद जिन्हहि परमप्रिय खिन्न।।

दो. 18 बालकाण्ड (मानस)

अर्थात् जैसे गिरा (वाणी) और उसका अर्थ दो तत्त्व नहीं, वैसे ही जल और लहर एक-दूसरे से पृथक् नहीं कहे जा सकते। दोनों तत्त्व एक हैं, नाम दो हैं। उसी के समान सीता और राम केवल वाणी में दो नाम हैं तत्त्व से एक ही हैं। मैं उन एकभूत हुए सीताराम को नमस्कार करता हूं जिन्हें खिन्न (दीन दुःखी) लोग बहुत प्रिय हैं। शिव और शक्ति की तात्त्विक एकता दर्शाने के लिए ही कलाकारों ने अर्धनारीश्वर की मूर्तियां बनाई जिसमें एक ही मूर्ति के बायें भाग में शक्ति और दूसरे भाग में शिव को दिखाया गया।

सृष्टि का बहिरंग जड़ है और अन्तरंग चेतन है। स्थूल जड़ है, मूल चेतन है। व्यक्त जड़ है और अव्यक्त चेतन है। देश-काल परिच्छिन्न जड़ है और देश-कालातीत चेतन है। दृश्य जड़ है और द्रष्टा चेतन है। इन्द्रियगोचर जड़ है और इन्द्रियातीत चेतन है। अतः यह सृष्टि और उसका अन्तिम सारतत्त्व चेतन ही है, जड़ नहीं।

प्राचीन विज्ञान का दुराग्रह था कि भौतिक जड़ तत्त्व ही सृष्टि का अन्तिम सार पदार्थ है। पदार्थ की परिभाषा है जो वस्तु जगह घेरती है और वजन रखती है, उसे पदार्थ कहते हैं। आधुनिक विज्ञान ने पदार्थ को Molecule में, Molecule को Atom में, Atom को इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन, प्रोटोन आदि में तोड़कर यह पाया कि अन्त में पदार्थ न बचकर केवल ऊर्जा ही बचती है। रसेल जैसे प्रखर यथार्थवादी दार्शनिक

ने भी कह दिया है कि भौतिकवाद का भवन गिर चुका है। जड़ पदार्थ की जिन ईंटों से भौतिकवाद का भवन खड़ा हुआ था वे ईंटें ही कच्ची प्रमाणित हुई! अतः भौतिकवाद का महल ध्वस्त हो गया है। इसलिए विश्व की अन्तिम सत्ता ऊर्जा शक्ति को मानकर Materialism के स्थान पर Energism का नारा लगाया जा रहा है।

अब उस Energy का स्वरूप क्या है? जड़ है या चेतन। इस पर वैज्ञानिकों में ऊहापोह चल रहा है। रसेल जैसा पुराना भौतिकवादी दुराग्रह के कारण अभी तक उस ऊर्जा को आध्यात्मिक शक्ति तो नहीं मान सका किन्तु वह कहता है यह शक्ति अत्यन्त रहस्यमयी है। जो अभौतिक शक्ति है। सम्भवतः वह जड़-चेतन दोनों से परे है, जिसने जड़ और चेतन दोनों को प्रकट किया है।

रसेल का यह विचार भी नितान्त अनुकूल ही है। जहां तक जड़-चेतन का भेद है वह सीमित जड़ और सीमित चेतन का ही भेद है—इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार सब सीमित चेतना के खेल हैं। परम तत्त्व सच्चिदानन्दघन ब्रह्म जड़-चेतन के द्वन्द्व से परे निर्द्वन्द्व है। साधना की सीढ़ी के रूप में जड़ चेतन का भेद अनिवार्य है। जड़ को छोड़कर चेतन की ओर बढ़ना साधना है, साधना की सिद्धि हो जाने पर यह रहस्य खुलता है कि जिसे हम जड़ समझे बैठे थे वह चेतन की तमोगुणी लीला है। वही आत्मा पत्थर में सो रही है, पेड़ में स्वप्न ले रही है, पशुओं में ऊंघ रही है, मानव में जागृत है। वहां चराचर, स्थावर, जंगम में सारे विश्व में एक ही सत् का दर्शन होता है।

सीयराम मय सब जग जानी
'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'
हरिरेव जगत् जगदेव हरिः
साधना में 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'
सिद्धि में 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।'

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा।। 2/218/4, मानस

उमा दारु जोषित की नाईं।
सबहि नचावत रामु गोसाईं।। 4/10/7, मानस

सब करन-करावन आप ही आप। नानक

जिसका अहम् बना हुआ है वह अपने अहंकार से कर्म करता है। अतः वह कर्म के लिए उत्तरदायी है। जिसके कर्तापन के अहंकार का लय भगवान् में हो गया उसे कर्मफल नहीं भोगना पड़ता है। पर जब कर्तापन का अहंकार लय हो जाएगा तब कर्मफल नहीं है। क्योंकि वह भगवान् की प्रेरणा से कर्म करता है।

अहंकार लय करना ही साधना है।

कर्तापन का लय करना ही साधना है।

जैम्स जीन, श्रोडिंजर आदि पश्चिम के चोटी के वैज्ञानिक यह घोषणा करने लगे हैं कि पदार्थ के विश्लेषण से प्रकट होने वाली ऊर्जा का स्वरूप जड़ नहीं वरन् चेतन ही है। इस प्रकार आधुनिक विज्ञान वेदान्त की ड्योढ़ी में चरण रख रहा है। अभी तक वेदान्त मन्दिर के गर्भगृह में नहीं पहुंचा। परम चैतन्य की झलक मिल जाने पर पूरे विज्ञान जगत् का रूपान्तरण हो जाएगा। विज्ञान ही न रहकर दर्शन में परिणत हो जाएगा।

परम सत् ज्ञेय है अथवा अज्ञेय

संशयवाद—कुछ विचारक परम सत्य की सत्ता में ही संशयशील रहते हैं। वे कहते हैं कि अन्ततोगत्वा कोई अविनाशी सत्ता है या नहीं हम यह भी नहीं कह सकते। कठोपनिषद् में नचिकेता के मृत्यु का रहस्य पूछने पर यमराज नचिकेता को समझाते हैं कि इस विषय में देवता भी विचिकित्सा करते रहते हैं। गीता में भी भगवान् ने कहा है—

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।। 2/29, गीता

अर्थात् कोई इस परम तत्त्व को आश्चर्य से देखता है, कोई आश्चर्य से सुनता है, कोई आश्चर्य कथन करता है किन्तु कोई-कोई सुनकर भी इसको जानता नहीं। परम सत् की सत्ता में संशय करने वाले अलग कोटि के लोग हैं और परम सत् को मानकर उसके गुह्य रहस्य पर विस्मय करने वाले अलग कोटि के हैं। इन्हें विस्मयवादी कहा जा सकता है।

कुछ (लोग) Agnostic अज्ञेयवादी कहते हैं हम जान ही नहीं सकते। फूहड़ अज्ञेयवादी कहते हैं जानते ही नहीं और सूक्ष्म अज्ञेयवादी कहते हैं हम जान सकते ही नहीं।

कुछ लोग परम तत्त्व का शाब्दिक वाचन जानते हैं। उन्हें वेदों के मंत्र कंठस्थ हैं। किन्तु उन्हें सत्य की आध्यात्मिक अनुभूति नहीं हुई है। इनके विषय में स्वयं वेद ही कहता है—जो यह घमण्ड करता है कि मैं जानता हूं, वह नहीं जानता। और जो नम्रतापूर्वक कहता है मैं नहीं जानता, वह जानने का पात्र बन जाता है। वेद में अन्यत्र कहा है—

'यस्तन्न वेद किं ऋचा करिष्यति'

यदि मनुष्य ने परम तत्त्व को नहीं जाना तो वेद की ऋचा उसका क्या कल्याण करेगी। ऐसे लोगों को ज्ञान दम्भी कहा जाता है। मंत्रों के सूखे शब्द-

कलेवर को चबाने से वास्तविक वेद (ज्ञान) का प्रकाश नहीं प्राप्त होता। भगवान् शंकराचार्य ने कहा है—

अविज्ञाते परे तत्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला।
विज्ञातेऽपि परे तत्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ।। 61, विवेक चूड़ामणि

अर्थात् जब तक परम तत्त्व का ज्ञान नहीं हुआ तब तक (अज्ञानियों के लिए) शास्त्रों का सारा अध्ययन निष्फल है। जब परम तत्त्व का अच्छी प्रकार ज्ञान हो गया तब (ज्ञानियों के लिए) शास्त्रों के अध्ययन का फिर क्या प्रयोजन? ऐसे ज्ञान गम्भीर लोगों के लिए कहा गया है—

जैसे गधा चन्दन के भार को ढोकर ले जा रहा हो और उससे उसको स्वयं कुछ भी लाभ न हो। इसी प्रकार उत्तम ग्रंथों का बोझा लादे हुए परम तत्त्व के ज्ञान से वंचित ज्ञानदम्भी लोग होते हैं।

योगवासिष्ठ में ज्ञानबंधु शब्द ऐसे व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है जो जानता बहुत कुछ है किन्तु आचरण उसके अनुरूप नहीं करता। आजकल समाज में ऐसे ही लोगों की भरमार है।

ज्ञानपापी शब्द ऐसे व्यक्ति के लिए उपयोग किया जाता है जो धर्म का शाब्दिक ज्ञान होने पर भी आचरण में अधर्मी होता है।

अज्ञानी और अज्ञेयवादी में अन्तर है। अज्ञानी परम तत्त्व को जानता नहीं पर भविष्यत् में जानने की चेष्टा कर सकता है। वह हताश निराश नहीं होता। अज्ञेयवादी मानता है कि उसे जाना ही नहीं जा सकता। तार्किक अज्ञेयवादी ये मानता है कि उसे तर्क के द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता। बौद्धिक एवं तार्किक अज्ञेयवादी केवल बुद्धि द्वारा जानने के प्रयास में असफल होता है। हिम्मत हार बैठता है। कान्ट ने भी अपनी Critique of pure reason में दर्शाया कि शुद्ध तर्क द्वारा ईश्वर की सत्ता सिद्ध नहीं की जा सकती। किन्तु नीतिशास्त्र के लिए ईश्वर की महत्ता मानकर उसने Critique of practical reason ईश्वर की सत्ता प्रमाणित की है। ज्ञान-साधनावादी वे लोग हैं जो परम तत्त्व को जानने की अनवरत साधना करते रहते हैं। वे सत्य की खोज में कभी कठिनाइयों से निराश और मोह से विचलित नहीं होते। भगवान् गीता में कहते हैं—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।। 7/3, गीता

हजारों मनुष्यों में कोई एक ही (मोक्ष रूप) सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है (और उन) प्रयत्न करने वाले सिद्धों (अर्थात् साधकों) में भी कोई एक ही मुझको तत्त्व से (अर्थात् स्वरूपतः) जानता है।

भगवान् गीता में ही अन्यत्र कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते। 7/19, गीता

अर्थात् बहुत जन्मों के अन्त में ज्ञानवान मुझे प्राप्त कर लेता है। इसलिए सच्चा ज्ञानसाधक अनेकानेक जन्मों में साधना करते हुए भी परम सत्य की साधना से विचलित नहीं होता। इसलिए गांधीजी ने कहा है, 'हिन्दुत्व सत्य की अनवरत साधना है।'

ज्ञेयवादी—ऐसे विचारक हैं जो यह मानते हैं कि परम तत्त्व को निश्चय ही जाना जा सकता है। यदि परम तत्त्व अज्ञात भी हो और अज्ञेय भी रहने वाला हो तब उसके लिए परिश्रमपूर्वक साधना करने का क्या लाभ है। तपस्या निष्काम भले ही हो किन्तु निष्फल नहीं होनी चाहिए। वेद का ऋषि घोषणा करके कहता है—

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः।। 2/5, श्वेता उ.

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।। 3/8, श्वेता उ.

अर्थात् हे सब अमृतपुत्रो! सुनो। हे दिव्य धामों के निवासी देवताओ! तुम भी सुनो। मैं उस परम पुरुष को जानता हूं जो सूर्य के तेजस्वी वर्ण का है और अंधकार से नितान्त परे है। गीता में भी भगवान् ने कहा है—

'ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं' 13/17, गीता

अर्थात् वह परम तत्त्व ज्ञानस्वरूप है। जानने योग्य है और ज्ञानगम्य है।

भारत के ऋषियों, साधकों और संतों ने उसको जाना है और जानने की स्पष्ट साक्षी भी दी है। रामकृष्ण परमहंस ने नरेन्द्र को असंदिग्ध शब्दों में बताया कि परम तत्त्व को देखा और जाना जा सकता है। स्वामी रामतीर्थ, अरविन्द, रमण महर्षि, शिवानन्द आदि महापुरुषों को परम सत्य की अपरोक्षानुभूति हुई है। ऐसे भगवत् साक्षात्कारी महापुरुष स्वयं भगवत्स्वरूप ही बन गए। वेद ने कहा है—

'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।'

इसी को तुलसीदासजी ने लिखा—

जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई।

परम तत्त्व को जानने के साधन

मानव के पास सबसे प्रथम ज्ञान का साधन ज्ञानेन्द्रियां ही हैं। क्या परम तत्त्व को इन ज्ञानेन्द्रियों से जाना जा सकता है। हम जानते हैं कि ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति सीमित है। शरीर में ब्रह्मरंध्र से नीचे उतरने पर सबसे पहली ज्ञानेन्द्रिय चक्षु इन्द्रिय है। इससे हम बहुत दूर की वस्तु को भी मार्ग में बाधा न होने पर देख सकते हैं।

सूर्य और चन्द्रमा लाखों मील दूर होने पर भी आकाशमार्ग में बाधा न होने के कारण और बहुत बड़े आकार के होने के कारण दिखाई देते हैं।

धरती पर वस्तुएं छोटी होने के कारण, धरती की गोलाई से हट जाने के कारण मील दो मील के बाद दिखाई नहीं देती। बारीक वस्तु तो पांच-दस फुट से अधिक दूरी से दिखाई नहीं देती। आंख से कम शक्ति वाला इंद्रिय कर्णेन्द्रिय है। इससे 30-35 या 50 फुट तक की ध्वनि सुनी जा सकती है। नाक नीचे स्तर का घ्राणेन्द्रिय है। इससे आठ-दस फुट तक की सुगंधि सूंघी जा सकती है। उससे नीचे रसना इन्द्रिय है इससे होंठ या जिह्वा पर स्पर्श होने पर ही रस का ज्ञान होता है। उससे नीचे त्वचा की इन्द्रिय है। त्वचा के प्रत्यक्ष सम्पर्क से ही गर्मी-सर्दी, कोमल कठोर आदि का ज्ञान हो सकता है। सभी ज्ञानेन्द्रियां सीमित शक्तिवाली, बहिर्मुखी तथा स्वतः प्रकाशित न होकर पर-प्रकाशित है। पांचों ज्ञानेन्द्रियां तभी तक काम करती हैं जब तक उनके पीछे मन जागृतावस्था में कार्यशील रहता है। मन के सो जाने पर सब इन्द्रियां स्वस्थ होते हुए भी बेकार हो जाती हैं।

इन्द्रियां शरीर के साथ जन्मती हैं और शरीर के साथ ही वृद्ध एवं बेकार हो जाती हैं और शरीर के मरने के साथ ही मर जाती हैं। अतः ये अनादि-अनन्त विश्व के चरम सत्य को कैसे जान सकती है?

गई पूतरी नौन की थाह समुद्र की लेन,
गल बल वह सिन्धु भई कहे कौन अब बैन।

मरणधर्मा इन्द्रियां, मरणधर्मा शरीर के मृत्युघाट पर अमर वस्तु की क्या खोज कर सकती हैं?

प्रश्न है कि ज्ञाता कौन है? सामान्य व्यक्ति मरणधर्मा मनुष्य को ही ज्ञाता मान लेता है। फिर ज्ञान का साधन क्या है? सामान्य व्यक्ति ज्ञानेन्द्रियों को ही ज्ञान का साधन मान लेता है। फिर प्रश्न है कि खोजना किसे है? खोजना है विश्व की एकमात्र अन्तिम सचाई को।

सामान्य व्यक्ति जो कुछ इन्द्रियग्राह्य है उसे ही ज्ञान मान लेता है। ये ज्ञाता, ये ज्ञेय, ये ज्ञान साधन सब नश्वर ही हैं। यदि एक मुर्दा श्मशान भूमि में मुर्दों की बारात सजाकर सत्य रूपी सती से विवाह रचाने के लिए नश्वर इन्द्रियों का बैंड बजाकर जाए तो उस विवाह में ज्ञान की हलवा-पूरी खाकर अजीर्ण किसके पेट में होगा?

मन इन्द्रियों का राजा है किन्तु स्वयं भी अन्दर की इन्द्रिय है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये चार अन्तःकरण अर्थात् अन्दर की इन्द्रियां हैं। इनसे बाह्य ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा कुछ अधिक सूक्ष्म जानकारी मिलती है। किन्तु यह सब भी

नश्वर, सीमित एवं परतः-प्रकाशित हैं। इसका अपना प्रकाश नहीं है। जो मन और बुद्धि स्वयं आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं और आगे जगत् को प्रकाशित करते हैं वे अपने मूल को प्रकाशित नहीं कर सकते। कोई भी पुत्र अपने पिता को दूल्हा बने हुए नहीं देख सकता। जो बल्ब विद्युत् से प्रकाशित होकर अन्य वस्तुओं को प्रकाशित करता है वह स्वयं विद्युत् को ही प्रकाशित नहीं कर सकता। बुद्धि का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह पहले तर्क कथन के लिए वाक्य को कम से कम तीन भागों में विभाजित करती है—Subject, Predicate और Copula जैसे Man (S) is (C) Mortal (P) फिर संश्लेषण द्वारा उसे एक बनाने की चेष्टा करती है। क्योंकि सत्य परम सत्य अन्ततोगत्वा एक है। एक बार तोड़ने के पश्चात् जोड़ना असम्भव हो जाता है। बुद्धि स्वयं भी आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित है। अतः वह संसार की अपूर्ण वस्तु को ही प्रकाशित करती है। स्वयं आत्मा को, अपने मूल को प्रकाशित नहीं कर सकती।

जब तक ज्ञाता स्वयं अज्ञात है तब तक सब ज्ञान अज्ञान है। अतः ज्ञान की प्राप्ति के लिए ज्ञाता की परख करना अनिवार्य है। सारा ज्ञान किसी ज्ञाता के साक्ष्य पर ही निर्भर करता है। यदि ज्ञाता विश्वसनीय है तो उसका ज्ञान भी विश्वसनीय है। यदि ज्ञाता ही अविश्वसनीय है तो उसके ज्ञान पर विश्वास कैसे किया जा सकता है। यदि ज्ञाता मूर्ख है तो उसका ज्ञान धोखा है। अमर के ज्ञान के लिए अमर ज्ञाता की आवश्यकता है। मरणधर्मा डॉक्टर यदि अपने साधारण डॉक्टरी थर्मामीटर से सूर्य का ताप मापने के लिए चल पड़े तो सूर्य के ताप के ज्ञान से पहले ही ज्ञाता डॉक्टर और ज्ञान का साधन तापमापक यंत्र दोनों जल जाएंगे। अतः अमर ज्ञान के लिए ज्ञाता भी ऐसा चाहिए जो अमर के ताप, तेज को सह सके और ज्ञान का साधन भी ऐसा चाहिए जो ज्ञान की खोज करते-करते स्वयं ही चटक न जाए। अतः अमर ज्ञान का लक्ष्य भी अमर आत्मा है। उसका सच्चा ज्ञाता भी आत्मा ही हो सकता है। तथा ज्ञान का साधन भी अमर आत्मा के सिवा अन्य कोई नहीं टिक सकता है। इसलिए भगवान् कहते हैं—ज्ञानम्, ज्ञेयम्, ज्ञानगम्यम्। जब ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय की त्रिपुटी एक परम तत्त्व में लय हो जाती है तभी सृष्टि के चरम परम सत्य का दर्शन होता है।

ज्ञान की महत्ता

वेद ने कहा है—

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'

अर्थात् बिना ज्ञान के मुक्ति सम्भव नहीं है। इसका अर्थ है कि कर्मयोगी, भक्तियोगी, राजयोगी सभी को अपने-अपने पथ से विकास करके अन्त में परम तत्त्व का साक्षात्कार करना ही पड़ेगा तभी मुक्ति सम्भव होगी। निष्काम कर्मयोग से चित्त शुद्ध हो जाने पर शुद्ध चित्त में ब्रह्मज्ञान प्रभासित होने लगेगा। भक्तियोगी

भक्ति में अपना मन और बुद्धि जब परमेश्वर को चढ़ा देगा तो प्रभु उसे अपनी आत्मा में बसा लेंगे। प्रभु का साक्षात्कार होते ही उसे मुक्ति प्राप्त हो जाएगी। राजयोगी चित्त की वृत्तियों को रोककर मन की तार परम चैतन्य परमेश्वर से जोड़ेगा। तब उसके अन्तर में प्रभु का प्रकाश जगमगा उठेगा। परम सत्य का रहस्य खुल जाने पर वह मुक्त हो जाएगा। इस प्रकार सब मार्गों का अन्तिम फल ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश है और उसका फल मोक्ष या भगवत्प्राप्ति है। भगवान् शंकराचार्य तो भक्ति की भी ज्ञानपरक व्याख्या करते हुए कहते हैं—

स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते। वि.चू., 32

अर्थात् अपने स्वरूप का अनुसंधान ही भक्ति कहलाती है। अनन्य भक्ति में प्रभु को अपना आत्मा मानकर ही पूजा जाता है। इसी को गीता में भगवान् ने सर्वोच्च भक्ति कहा है। अतः सर्वोच्च भक्ति ज्ञानस्वरूपा अथवा ज्ञानाश्रयी भक्ति बन जाती है। प्रेमाश्रयी भक्ति में भी ज्ञान का संयोग अनिवार्य है।

(ख) गीता में भगवान् ने स्वयं अपने मुख से ज्ञान की बड़ी महिमा गायी है। भगवान् गीता में कहते हैं—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। 4/38, गीता

अर्थात् ज्ञान के समान कोई भी पवित्र वस्तु सारे त्रिभुवन में दूसरी नहीं है। इसका कारण यह है कि ज्ञान का ही दूसरा नाम है—सत्य। चाहे सत्य को ज्ञान का फल मानें। ज्ञान का समानार्थक शब्द सत्य—दोनों का भाव एक ही है। परमेश्वर को ज्ञान स्वरूप कहें या सत्यनारायण अर्थ एक ही होता है। वेद ने कहा है प्रज्ञानम् ब्रह्म अर्थात् ज्ञान ही ब्रह्म है। वेद में ही अन्यत्र कहा है सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म। अर्थात् सत्य और अनन्त का ज्ञान का नाम ही ब्रह्म है। ब्रह्म से अधिक पावन और क्या हो सकता है। वास्तव में वही एकमात्र पावन तत्त्व है। उसके अतिरिक्त जो कुछ है सब अपावन ही अपावन है। मनुष्य के पास पवित्रता के पांच बड़े साधन पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश हैं। वह मिट्टी से अंग एवं बर्तन मांजता है। किन्तु मिट्टी असंख्य कीड़ों का वास स्थान है। असंख्य लोगों की पदचाप से कुचली जाती है। मल-मूत्र, थूक खंखार सभी इसी में मिल जाते हैं। मुर्दे इसी में गाड़े जाते हैं। कुछ वर्षों के बाद वह शव भी मल यानी मिट्टी हो जाते हैं। अतः मिट्टी को पूर्ण शुद्ध नहीं माना जा सकता। ऐसे ही जल में असंख्य जीवों का वास है। जन्म से मृत्यु की लीला जल में ही सम्पन्न होती है। मनुष्य भी अपनी सारी गन्दगी जल में डालता है। अग्नि मल को, उच्छिष्ट को भी जलाती है। वायु में अनेकों विषैली गैसें मिली होती हैं। इस प्रकार मिट्टी की तरह ही जल, अग्नि, वायु, आकाश को परम पावन शुद्ध, पवित्र नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार सारी सृष्टि में सबसे पावन, सबसे शुद्ध-विशुद्ध-परिशुद्ध कुछ है तो ब्रह्मज्ञान ही है। इसलिए पवित्रीकरण के मंत्र में कहा जाता है—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
य स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

अर्थात् मनुष्य पवित्र हो अथवा अपवित्र किसी भी अवस्था में हो जो पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु का स्मरण करता है, वह अन्दर और बाहर से पवित्र हो जाता है।

(ग) भगवान् गीता में कहते हैं—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि।। 4/36, गीता

हे अर्जुन! यदि तू सब प्राणियों से बढ़कर सबसे बड़ा पापी भी क्यों न हो तब भी ज्ञान की नौका पर बैठकर तू सब पापों से तर जाएगा। इस प्रकार ज्ञान संसार के बड़े से बड़े पापियों को भी तारने में समर्थ है। ज्ञान की महिमा का इससे बड़ा घोषणापत्र और क्या हो सकता है। इसका रहस्य यह है कि रात्रिकाल के करोड़ों योजन दूरी तक फैले हुए अंधकार को न झाड़ू-बुहारी से हटाया जा सकता है न तलवार से काटा जा सकता है। न तोपों से उड़ाया जा सकता है। न अन्य किसी उपाय से हटाया जा सकता है। किन्तु सूर्य के प्रकाश की प्रथम किरण के स्पर्श मात्र से ही वह करोड़ों योजन तक फैला हुआ भयानक काला अंधकार लवमात्र में ऐसा लुप्त हो जाता है कि उसका कोई चिह्न भी शेष नहीं बचता है। इसी प्रकार ज्ञान रूपी सूर्य की एक हलकी-सी किरण छू जाने से समस्त पाप लुप्त हो जाता है। पाप मानव जीवन का मौलिक अंग नहीं है। यह आरोपित मात्र है। आगन्तुक है।

वेदान्त के अनुसार पाप वास्तव में एक भूल मात्र है। भूल का सुधार होते ही पाप नष्ट हो जाता है। उसमें देरी लगने का कोई प्रश्न ही नहीं। जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाने से ही पाप ताप को भोगने लगता है। स्वरूप का ज्ञान होते ही वह सत् कोटि जन्मों के पाप-ताप से तर जाता है।

शेर का बच्चा सियार समूह में फंस जाता है, उन्हीं के समान व्यवहार करने लगता है। किन्तु अपने स्वरूप का बोध होते ही वह निर्भय होकर गरजने लगता है।

गीता में भगवान् ने काम, क्रोध और लोभ को पाप के सबसे बड़े कारण बताये हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।। 16/21, गीता

हे अर्जुन! नरक के तीन दरवाजे हैं—काम, क्रोध और लोभ। इसलिए इनको त्याग दो।

अन्यत्र भगवान् कहते हैं—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।। 3/37, गीता

अर्थात् काम और क्रोध रजोगुण से पैदा होने वाले भयंकर राक्षस हैं जो मनुष्य को पाप में प्रवृत्त करते हैं। आगे सबसे बड़ा काम को ही पाप का कारण बतलाते हुए कहते हैं—

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।। 3/43, गीता

हे अर्जुन! तुम इस कठिनता से विजय होने वाले महाशत्रु को मार डालो। काम की पूर्ति से लोभ बढ़ता है और कामपूर्ति में बाधा आने से क्रोध बढ़ता है। इसलिए सब पापों का मूल कारण काम ही है। कामना अज्ञान से पैदा होती है। जब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को जान ले तो उसे ज्ञात हो जाए कि वह दुनिया के द्वार पर भीख मांगने वाला भिखारी नहीं है वरन् स्वयं सृष्टि का चरम परम सत्य है। तब उसके मन में क्षुद्र कामनाओं के लिए स्थान कहां बचता है? कामनाएं शरीर और मन की हैं। आत्मा पूर्णकाम, आप्तकाम है। अतः आत्मज्ञान के बाद काम बच ही नहीं सकता। तब कामना से प्रेरित होकर पाप नहीं हो सकता। कामना के न रहने से लोभ, क्रोध का स्थान ही नहीं। इस प्रकार ज्ञान होते ही मनुष्य जन्म-जन्म के पाप-ताप से तर जाता है।

मनुष्य को अपने लिए किए हुए कर्मों का फल तभी तक भोगना पड़ता है जब तक उसका पृथक् कर्तापन का अहंकार बना हुआ है। अहंकार के लय होने पर ही ब्रह्मज्ञान का अधिकारी बनेगा और ब्रह्मज्ञान के आते ही अहंकार का नाश हो जाएगा। और अहंकार के नाश होते ही कर्मों का लेखा-जोखा समाप्त हो जाएगा। स्वामी रामतीर्थ इस सन्दर्भ में एक दृष्टान्त देते हैं। एक गरीब कृषक ने एक सेठजी से कई बार कर्ज लिया। पर कर्ज चुकाने में असमर्थ था। तब सेठजी ने कृपापूर्वक कहा—कर्जे की एक लाइन माफ कर सकता हूं। कोई भी एक लाइन काट दो। तो कर्जदार ने अपने नाम की लाइन काट दी। और सेठ ठगा-सा रह गया। ऐसे ही कर्म करके कर्तापन को हटा देवें। अहंकार की लाइन काट दो तब कर्म का सारा लेखा-जोखा समाप्त हो जाएगा।

गीता के नवम् अध्याय में ऐसी घोषणा पुनः करते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।। 9/30, गीता

अर्थात् हे अर्जुन! यदि कोई बड़े से बड़ा दुराचारी अनन्यभाव से भजन करे तो वह सम्यक् व्यवस्थित साधु ही माना जाना चाहिए।

आगे भगवान् पुनः कहते हैं कि—

'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा' 9/31, गीता

वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है। इसका अर्थ यह है कि पाप मानव पर बाहर से आरोपित एक भूल या भ्रान्ति का खेल है। यह उसके व्यक्तित्व का अंग नहीं। यदि पाप व्यक्तित्व का स्थायी अंग बन जाता तो हृदय परिवर्तन के चमत्कार से रत्नाकर डाकू कभी महर्षि वाल्मीकि नहीं बन सकता था। न ही बिगड़ा हुआ वैश्य पुत्र विश्ववंद्य महात्मा बन सकता था। न चण्ड अशोक महान् अशोक बन सकता था।

(ङ) ज्ञानी भक्त की सर्वोपरि श्रेष्ठता—गीता में भगवान् ने भक्तों की चार कोटियां गिनाई हैं—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। इन सबमें भगवान् ज्ञानी भक्त को सर्वश्रेष्ठ बताते हैं। भगवान् इतना तक कहते हैं—

'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।' 7/18, गीता

ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है।

(च) ज्ञान कर्मों के बंधन को भस्म कर देता है। भगवान् गीता में कहते हैं—

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।। 4/19, गीता

अर्थात् ज्ञान की अग्नि से जिनके कर्म जल चुके हैं उन्हीं को ज्ञानी लोग सच्चा पंडित मानते हैं। वास्तव में जैसे ऊपर बताया गया है कर्म का बंधन तभी तक रहता है जब तक कर्तापन का अहंकार रहता है। इसलिए सच्चा ज्ञान होते ही कर्मों का खाता जल जाता है।

गीता में ज्ञानी ऋषियों की महिमा में भगवान् ने एक दूसरा विशेषण प्रयोग किया है—

'ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः।' 5/17, गीता

अर्थात् ज्ञान द्वारा जिनके मन का कलुष, कल्मष धुल चुका है।

ज्ञान साधना

गीता ब्रह्मविद्या है। अतः यह ब्रह्मज्ञान का ही आख्यान है। भगवान् शंकराचार्य एवं संत ज्ञानेश्वर, मधुसूदन सरस्वती एवं स्वामी चिद्घनानन्द ज्ञानयोग को ही गीता का मुख्य उपदेश बताते हैं। अर्जुन के मोह को दूर करने के लिए भगवान् ने सबसे प्रथम आत्मज्ञान का ही उपदेश दिया। यदि कर्म या उपासना उनका सर्वोपरि श्रेष्ठ संदेश होता तो सबसे प्रथम उसी का निर्वचन करते।

द्वितीय अध्याय के अन्त में स्थितप्रज्ञ दर्शन का निरूपण कर ब्राह्मीस्थिति का सर्वोच्च आदर्श प्रस्तुत किया गया। महाभारत के अठारह पर्वों का सार गीता के 18 अध्यायों में और गीता के 18 अध्यायों का सार स्थितप्रज्ञ के 18 श्लोकों में केन्द्रित है और यह स्थितप्रज्ञ दर्शन ज्ञानयोग का विषय है। कर्म या उपासना का नहीं।

तीसरे अध्याय में ज्ञान और कर्मयोग दोनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें लोकसंग्रह के लिए कर्म करने का उपदेश अवश्य दिया गया है किन्तु ज्ञानयुक्त कर्म को ही यज्ञ कर्म या निष्काम कर्म कहकर उसकी प्रशंसा की गई है। तीसरे अध्याय के अन्त में भगवान् कहते हैं—

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना। 3/43, गीता

इस अध्याय का नाम कर्मयोग है पर निष्कर्ष में भगवान् कहते हैं बुद्धि से परे सबसे सूक्ष्म, शक्तिमान एवं श्रेष्ठ आत्मा को जानकर मन को वश में करके हे महाबाहो! आत्मज्ञान द्वारा इस दुर्जय काम रूप शत्रु को मार दो। यहां भी कर्मयोग का अन्तिम निष्कर्ष ज्ञानयोग में निरूपित किया गया है।

चौथे अध्याय में भगवान् अपने दिव्य कर्म और अवतार सिद्धान्त का रहस्य बताते हैं और सच्चे पंडित का लक्षण बताते हुए कहते हैं—ज्ञान रूपी अग्नि से जिसके कर्म जल चुके हैं वही सच्चा पंडित है। पुनः कहते हैं आसक्ति रहित ज्ञान में स्थित हुए चित्त वाले, यज्ञमय जीवन बिताने वाले मुक्त पुरुष के सब कर्म नष्ट हो जाते हैं। फिर भगवान् ब्रह्म कर्म का निरूपण करते हैं। जिसमें ब्रह्म ही अर्पण है, ब्रह्म ही हवि है, ब्रह्म ही अग्नि है, ब्रह्म ही आहुति देने वाला है। उसका लक्ष्य भी ब्रह्म ही है। और इस प्रकार समस्त कर्म ब्रह्म रूप हो जाते हैं। फिर भगवान् देव यज्ञ, ब्रह्म यज्ञ की चर्चा करते हैं। ब्रह्मयज्ञ ज्ञानयज्ञ ही है। फिर भगवान् कहते हैं आत्मसंयम रूपी अग्नि ज्ञान से प्रकाशित है। योगी अपनी इन्द्रियों और प्राण की समस्त चेष्टाओं को हवन कर देता है।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।। 4/27, गीता

फिर भगवान् स्वाध्याय ज्ञान यज्ञ की चर्चा करते हैं। फिर ज्ञान यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ निरूपित कर कहते हैं—

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।। 4/33, गीता

अर्थात् द्रव्य यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है तथा समस्त कर्म अन्ततोगत्वा ज्ञान में ही लय हो जाते हैं। फिर भगवान् ज्ञान की नौका से सब पापों से तर जाने की बात समझाते हैं। फिर कहते हैं जिस प्रकार अग्नि बड़े से

बड़े ईंधन को पलभर में भस्म कर देती है ज्ञानाग्नि सब कर्मों को उसी प्रकार जला देती है। सब कर्म द्वैत में होते हैं, अद्वैत का बोध होते ही द्वैत की सारी कर्म सृष्टि उसी प्रकार लुप्त हो जाती है जैसे नेत्र खुलते ही स्वप्न की सारी सृष्टि पल भर में लुप्त हो जाती है। इस ज्ञानकर्मसंन्यास रूपी चौथे अध्याय के निष्कर्ष में भगवान् कहते हैं जो आत्मवंत है और ज्ञान संच्छिन्न संशय है उसे कोई भी कर्म नहीं बांध सकते हैं।

तीसरे अध्याय के निष्कर्ष चौथे अध्याय में दोहराते हुए पुनः भगवान् कहते हैं—

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत।। 4/42, गीता

ज्ञान रूपी तलवार को उठाकर काम रूपी शत्रु को मार डालो। जिस प्रकार प्रकाश की पहली किरण ही करोड़ों योजन मील तक फैले हुए अंधकार का कलेजा चीर डालती है उसी प्रकार ज्ञान रूपी शस्त्र अज्ञानजनित काम, क्रोध आदि शत्रुओं का कलेजा चीर देता है।

पांचवें अध्याय का नाम कर्मसंन्यासयोग है। कर्मयोग प्रवृत्ति मार्ग और संन्यास ज्ञानयोग समर्थित निवृत्ति मार्ग है। भगवान् दोनों की अन्तर्भूत एकता निरूपित करते हैं। भगवान् कहते हैं जो किसी से द्वेष नहीं करता और आकांक्षा भी नहीं रखता वह नित्य संन्यासी है। आसन्न संन्यासी और वेश संन्यासी तो बहुत हैं किन्तु जो ज्ञान में स्थित होकर काम (आकांक्षा), क्रोध (द्वेष) से मुक्त हो जाता है वह नित्य संन्यासी बन जाता है। जब सब कुछ मैं हूं सब मेरी ही विभूति है तो मैं कामना किसकी करूं? और क्रोध किस पर करूं?

ज्ञेयः स नित्यसन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते।। 5/3, गीता

नित्य वस्तु के प्रति जिसने अपने जीवन का अच्छी प्रकार से न्यास कर दिया है वह नित्य संन्यासी है। ज्ञानी कर्मों में लिपायमान नहीं होता—

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।। 5/7, गीता

क्योंकि वह सर्वभूतात्म भूतात्मा बन जाता है। अर्थात् वह विश्व रूप बन जाता है। ज्ञानी ब्रह्म के समर्पित कर्म करते हुए उसी प्रकार पाप से लिपायमान नहीं होता जैसे पद्मपत्र जल में रहते हुए भी जल से लिपायमान नहीं है—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।। 5/10, गीता

अज्ञान से ज्ञान पर परदा पड़ जाता है। इसी कारण जीव मोहित हो जाते हैं।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः। 5/15, गीता

जिनका अंत:करण का अज्ञान आत्मज्ञान के द्वारा नाश हो गया है उनका वह ज्ञान सूर्य के समान ब्रह्म को प्रकाशित करता है—

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्।। 5/16

फिर कहते हैं जिनकी बुद्धि भगवान् से तद्रूप है, मन उसी में लगा है, उसी में निष्ठा और उसी के परायण है, ज्ञान द्वारा जिनके पाप धो दिए गए हैं वे पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त होकर परमगति को प्राप्त करते हैं। सच्चा ज्ञानी विद्या, विनय, सम्पन्न ब्राह्मण, गो, हाथी, चाण्डाल, सबमें एक ब्रह्म का ही दर्शन करता है। इस अध्याय के अन्तिम निष्कर्ष में भगवान् पुनः ज्ञान की महत्ता ही सिद्ध करते हैं—

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः।। 5/28, गीता

अर्थात् यज्ञों, तपस्याओं का भोक्ता सर्वलोक महेश्वर सब भूतों के सुहृद (मित्र) मुझ आत्मा को जानकर जीव परमशान्ति को प्राप्त करता है।

छठे अध्याय का विषय आत्मसंयमयोग है। इसमें भगवान् कहते हैं जो सर्व संकल्प संन्यासी है वही योगारूढ कहा जाता है। ऐसा योगी ज्ञान योगी ही है। आत्मा की महत्ता दर्शाते हुए भगवान् कहते हैं स्वयं आत्मा के द्वारा ही आत्मा का उद्धार करो।

जो ज्ञान विज्ञान तृप्त आत्मा है, जो आत्मस्थित है, जितेन्द्रिय है, वह सोने और मिट्टी में सम दृष्टि रखता है। रामकृष्ण परमहंस देव गंगा के किनारे बैठ सोना-माटी, माटी-सोना कहकर दोनों को नदी में फेंक देते थे।

जो हितात्मा और प्रशांत है उसके ज्ञान में परमात्मा अच्छी प्रकार से स्थित है—

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदु:खेषु तथा मानापमानयोः।। 6/7, गीता

जब साधक आत्मा से आत्मा का ही दर्शन करता है तो वह बहुत ही आनन्दित होता है—

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।। 6/20, गीता

मन आत्मा के वश में स्थित हो जाता है तब वह अन्य किसी वस्तु का चिंतन नहीं करता।

सबसे श्रेष्ठ योगी वही है जो प्रत्येक परिस्थिति में सर्वत्र आत्मा का ही दर्शन करता है।

इस अध्याय के निष्कर्ष में भगवान् योगी को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए योगियों में सर्वश्रेष्ठ उसको मानते हैं जो श्रद्धापूर्वक अपना अन्तरात्मा भगवान् में लगाए रहता है।

सातवें अध्याय का नाम ही ज्ञान विज्ञान योग है।

भगवान् कहते हैं—अर्जुन! मैं तुझे ज्ञान विज्ञान के सहित कहूंगा जिसको जानकर शेष कुछ भी जानने योग्य नहीं बचता।

मैं सारे जगत् का प्रभव और प्रलय हूं।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।। 7/6, गीता

मेरे अतिरिक्त सारे विश्व में और कुछ भी सत्ता नहीं है। सब कुछ मेरे में वैसे ही पिरोये हुए हैं जैसे सूत की माला में सूत के मनके पिरोये हुए होते हैं। इसका अर्थ है कि भगवान् सृष्टि के अभिन्ननिमित्तोपादान कारण हैं।

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। 7/7, गीता

बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज मैं ही हूं। मेरी दैवीय गुणमयी माया बड़ी दुस्तर है। किन्तु जो मेरी शरण में आ जाते हैं वे इस माया को तर जाते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। 7/14, गीता

चार प्रकार के भक्तों में ज्ञानी भक्त नित्य युक्त होने के कारण सबसे उत्तम है।

'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।' 7/18, गीता

ज्ञानी तो मेरा आत्मा ही है।

'वासुदेवः सर्वमिति।' (7/19, गीता) की स्थिति में रहता है।

इस अध्याय के निष्कर्ष में भगवान् कहते हैं जो पुरुष अधिभूत, अधिदेव और अधियज्ञ सहित सबका आत्मरूप मेरे को जानते हैं वे अन्त काल में भी मुझे ही जानते हैं तथा प्राप्त करते हैं—

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः।। 7/30, गीता

आठवें अ. का नाम ही अक्षरब्रह्म योग है। यह तो ज्ञानयोग का ही विषय है। भगवान् ओम् का एक रूप ब्रह्म की महत्ता बताते हैं। ब्रह्म लोक से लेकर सब लोक पुनरावर्त्ती हैं किन्तु मुझे प्राप्त होने के पश्चात् पुनर्जन्म नहीं होता।

नवम् अध्याय राजविद्या राजगुह्य है। सब विद्या की सर्वोपरि श्रेष्ठ विद्या तो ब्रह्मविद्या ही है। और सब रहस्यों का सबसे बड़ा रहस्य यह है कि सारी सृष्टि का स्वामी विश्व का चरम परम सत्य परब्रह्म परमेश्वर हमारा अपना आप (आत्मा) है।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते। 9/15, गीता

22वें श्लोक में भगवान् आश्वासन देते हैं कि जो अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हैं उनके योगक्षेम को स्वयं मैं वहन करता हूं।

देवताओं के उपासक देवताओं को, पितरों के उपासक पितरों को, भूतों के उपासक भूतों को प्राप्त होते हैं। और मेरे भक्त मुझे ही प्राप्त करते हैं।

मैं सब भूत प्राणियों में सम हूं। मेरे लिए कोई भी राग अथवा द्वेष का पात्र नहीं है। जो भक्तिपूर्वक मेरा भजन करते हैं मैं उनमें निवास करता हूं वे मुझमें निवास करते हैं। यदि कोई दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भजन करे तो वह तुरन्त साधु या सज्जन बन जाता है।

अध्याय के अन्तिम श्लोक में भगवान् कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।। 9/34, गीता

अर्थात् हे अर्जुन! तू मन को मेरे में लगा। मेरा भक्त बन। मेरा ही यज्ञ, मुझे ही नमन कर। इस प्रकार मेरे से जुड़ा हुआ मेरे परायण हुआ मेरा आत्मा बनकर मुझे ही प्राप्त होगा।

10वां अध्याय विभूति योग है। इसमें भगवान् कहते हैं—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।। 10/8, गीता

मैं ही सबकी उत्पत्ति का कारण हूं, मेरे से ही सारी सृष्टि प्रवर्तित होती है। बुद्धिमान ऐसा मानकर मुझे निरन्तर भजते हैं। भगवान् कहते हैं ऐसे भक्तों को मैं तत्त्वज्ञान रूपी योग (ज्ञानयोग) देता हूं।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।। 10/10, गीता

मैं उनके अन्तःकरण में स्थित हुआ भागवत ज्ञान दीप द्वारा उनके अज्ञान जनित अंधकार को नष्ट करता हूं।

पुनः आत्मज्ञान का निरूपण करते हुए कहते हैं—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।। 10/20, गीता

भगवान् सबके हृदय में स्थित आत्मा हैं। यह शुद्ध वेदान्त का ज्ञान है।

39वें श्लोक में भगवान् कहते हैं सब भूतों का बीज मैं ही हूं। और चराचर में से कुछ भी मेरे रहित नहीं है। इस अध्याय के निष्कर्ष को अन्तिम श्लोक में भगवान कहते हैं—मैं सम्पूर्ण विश्व को अपनी योगमाया के अंश मात्र से धारण किये रहता हूं।

11वां अध्याय विश्वरूप दर्शन है। इसमें सारे विश्व के कण-कण में परमेश्वर की व्याप्ति का दिव्य दर्शन है

निष्कर्ष में भगवान् कहते हैं इस रूप का दर्शन न वेदों से प्राप्त होता है। न तप से, न दान से, न यज्ञ से। यह तो केवल अनन्य भक्ति से ही प्राप्त होता है। अनन्यता का भाव सारे विश्व में प्रभु के सिवा कुछ है ही नहीं। और निखिल सृष्टि के स्वामी प्रभु मेरे से अन्य, मेरे से पराये अथवा मेरे से पृथक् अन्य सत्ता वाले नहीं हैं। दूसरे शब्दों में प्रभु मेरे आत्मदेव हैं। और ये आत्मा ही परमात्मा है। यह ज्ञान की ही स्थिति है।

12वां अध्याय भक्तियोग है। किन्तु इसमें भी जो भक्त के लक्षण हैं वे ज्ञानी के लक्षणों से मिलते जुलते हैं। जैसे अद्वेष्टा (द्वेष रहित होना), निर्ममो-निरहंकार (अहंता और ममता) का नाश तो ज्ञान से होता है। मित्र-शत्रु, निन्दा-स्तुति में समान (स्थितप्रज्ञ के लक्षण ज्ञान सम्मत है)।

13वां अध्याय क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग है। इसमें शरीर को क्षेत्र और आत्मा को क्षेत्रज्ञ बताया गया है। इसमें ज्ञान के लक्षणों का अत्यन्त सुन्दर विवेचन है।

मान रहित होना, अहिंसा, शान्ति, क्षमा, सरलता, गुरुसेवा, शुद्धि, स्थिरता, मन का निग्रह, भोगों में वैराग्य, अहंकार का अभाव, जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि में दुःख दोषों का विचार। घर के जंजाल में आसक्ति का अभाव, प्रिय-अप्रिय की प्राप्ति में चित्त का सम रहना, अनन्य योग से और विचलित न होने वाली भक्ति से अनन्य एकांत और शुद्ध देश में निवास, भोगी जनों से विरक्ति। अध्यात्म ज्ञान में नित्य स्थिति, तत्त्वज्ञान के लक्ष्य परमेश्वर का दर्शन—ये सब ज्ञान है। इसके विपरीत सब अज्ञान है।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।। 13/17, गीता

ज्योति की ज्योति परम ज्योति, अंधकार से नितान्त परे है। वह ज्ञान स्वरूप है। वह ज्ञेय भी है। वह ज्ञान के द्वारा ही जानने योग्य है और सबके हृदय में प्रतिष्ठित है।

इस अध्याय के अन्तिम श्लोक में भगवान् कहते हैं जो पुरुष ज्ञानचक्षुओं द्वारा तत्त्व को जानते हैं वे परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

14वें अध्याय में गुणत्रय विभाग का वर्णन है। किन्तु भगवान् प्रारम्भ में ही कहते हैं—

ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्। 14/1, गीता

ज्ञानों में सबसे उत्तम ज्ञान हूं।

सब योनियों में माया तो गर्भ धारण करने वाली माता है और मैं बीज को स्थापन करने वाला पिता हूं। सत्त्वगुण निर्मल प्रकाश दाता और अनामय है।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत।। 14/11, गीता

जिस काल में देह तथा समस्त इन्द्रियों एवं अन्तःकरण में प्रकाश और ज्ञान उत्पन्न होता है उस काल में सत्त्व गुण बढ़ा हुआ होता है। सत्त्व गुण से ही ज्ञान पैदा होता है।

'सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं।' 14/17, गीता

ज्ञानी पुरुष साक्षी रूप होकर गुणों का खेल देखता हुआ गुणों से विचलित नहीं होता।

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते।। 14/23, गीता

अध्याय के अन्तिम श्लोक में पुनः ज्ञान की प्रतिष्ठा करते हुए भगवान् कहते हैं—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।। 14/27, गीता

ब्रह्म का, अमृत का, नित्य धर्म अखण्ड आनन्द का आश्रय मैं ही हूं।

15वें अध्याय को पुरुषोत्तम योग कहते हैं। इसमें पुरुषोत्तम तत्त्व सृष्टि के सर्वोत्तम सत्य की मीमांसा है।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।। 15/5, गीता

जो अध्यात्म का साधक कामना रहित होकर मान मोह से मुक्त हो, संग-दोषों को जीतकर, द्वन्द्वों से छूटकर अमूढ़ (मूढ़ रहित) ज्ञानी है वह अव्यय पद को प्राप्त करता है। उस अव्यय पद की व्याख्या छठे श्लोक में की गई है। ज्ञानयोग का एक अमर कथन भगवान् 15वें अ. के 15वें श्लोक में प्रस्तुत करते हैं—

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।। 15/15, गीता

मैं ही सबके हृदय में विराजमान हूं। मेरे से ही सब स्मृति ज्ञान और अपोहन होता है। सब वेदों द्वारा जपने योग्य मैं ही हूं। मैं ही वेदान्त का कर्ता और वेदों का ज्ञाता हूं। क्षर और अक्षर से परे जो उत्तम पुरुष है वह पुरुषोत्तम परमात्मा ही तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण पोषण करता है। अध्याय के अन्त में भगवान् पुनः ज्ञान की महत्ता ही सिद्ध करते हैं—

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।। 15/20, गीता

हे निष्पाप अर्जुन! मैंने तेरे को सबसे गोपनीय शास्त्र बताया। जिसको जानकर तू बुद्धिमान, ज्ञानी और कृत-कृत हो जाएगा।

16वें अध्याय में देवासुर सम्पद का वर्णन करते हुए जिन दैवी गुणों का वर्णन किया गया है वे 14वें अध्याय के ज्ञान के लक्षणों तथा दूसरे अध्याय के स्थितप्रज्ञ के लक्षणों से बहुत मिलते-जुलते हैं। प्रथम श्लोक में ही भगवान् कहते हैं—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।। 16/1, गीता

इसमें अन्य गुण तो ज्ञान के पोषक हैं किन्तु ज्ञानयोग व्यवस्थिति तो साक्षात् ज्ञानयोग ही है। अतः ज्ञानयोग द्वारा मनुष्य में देवताओं के लक्षण प्रकट होते हैं। इस अध्याय के अन्त में भगवान् कहते हैं 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते' अर्थात् इस विषय में शास्त्र तेरा प्रमाण है।

17वां अध्याय श्रद्धात्रयविभाग योग है। श्रद्धा भक्ति योग का पोषक तत्त्व है। इस अध्याय में भी 23वें श्लोक में ओम्तत्सत् की व्याख्या ज्ञान योग का विषय है। 26वें श्लोक में कहा गया है कि सत् शब्द परमात्मा का नाम, सत्य भाव अटल सत्ता और श्रेष्ठ भाव के लिए प्रयोग होता है। सत् वह है जिसकी सत्ता सदा बनी रहे। वही चरम परम सत्य है। दूसरे अध्याय में भगवान् सत्-असत् की कसौटी बता चुके हैं।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।। 2/16, गीता

मोक्ष संन्यास योग गीता के राज भवन का स्वर्ण कलश है। 18वें अध्याय के 18वें श्लोक में ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय की त्रिगुणमयी व्याख्या है। सात्त्विक ज्ञान का लक्षण बताते हुए भगवान् कहते हैं—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।। 18/20, गीता

जो सब भूतों में एक अव्यय अविनाशी भाव को देखता है और नाम-रूप में विभक्त वस्तुओं में भी एक ही अविभक्त सत्ता को देखता है वही ज्ञान सात्त्विक है।

जो भिन्न-भिन्न वस्तुओं एवं व्यक्तियों को नाम-रूप में बंटा हुआ देखता है वह ज्ञान राजस है।

जो शरीर में ही पूर्ण आसक्त है और इसी को ही सर्वस्व मान बैठा है। वह ज्ञान तामस है।

श्लोक 54 में ब्रह्मभूत ज्ञानी पुरुष का विवेचन करते हुए भगवान् कहते हैं—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।। 18/54, गीता

अर्थात् ज्ञानी पुरुष ब्रह्मभूत हो जाता है। इसका लक्षण यह है कि सदा प्रसन्नात्मा रहता है। जिसका लक्षण यह है कि वह कभी भी शोक नहीं करता। शोक क्यों नहीं करता? इसलिए कि वह कोई आकांक्षा ही नहीं करता है। वह सब भूतों में सम यानी ब्रह्म को देखता है इसलिए मेरी पराभक्ति (भक्त-भगवान् की एकता वाली) को प्राप्त करता है।

अध्याय के 61वें श्लोक में कहते हैं ईश्वर सब भूतों के हृदय में विराजमान है। 62वें श्लोक में कहते हैं—हे अर्जुन! सर्वभाव से उसी के शरण में जाओ। 63वें श्लोक में कहते हैं—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।। 18/63, गीता

यह मैंने गोपनीय में परम गोपनीय ज्ञान सुना दिया। इस पर अच्छी प्रकार विचार करके तेरी जैसी इच्छा हो वैसे कर। फिर कहते हैं कि सबसे परम रहस्य युक्त वचन को तू फिर सुन, मेरे मैं मन लगा, मेरा भक्त हो, मेरे लिए यज्ञ कर, मेरे को नमस्कार कर। मैं तेरे प्रति सच्ची प्रतिज्ञा करता हूं कि तू मेरे को ही प्राप्त होगा।

अन्तिम श्लोक में भगवान् आह्वान करते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। 18/66, गीता

अर्थात् हे अर्जुन! तू समस्त इन्द्रियों के धर्मों का परित्याग कर मेरी शरण में आ जा। मैं तुम्हें समस्त पापों से मुक्त कर दूंगा। तनिक भी चिन्ता मत कर, शोक मत कर। इन्द्रियां बहिर्मुखी हैं, बाहर के विषयों को भोगना ही उनका धर्म है। मन चंचल होने के कारण इन्द्रियों के भुलावे में आकर भोगों की ओर ही अग्रसर होता है। ऊपर के श्लोक में भगवान् कह चुके हैं **'मन्मना भव'** अर्थात् मन को मेरे में लगा दो। यदि इन्द्रियां बाहर के विषयों को देखने, सूंघने, चखने, भोगने के प्रकृत कार्यों में लगी रहेगी तो मन पुनः भटक कर उन्हीं के मार्ग पर चलने लगेगा। इसलिए भगवान् कहते हैं कि समस्त इन्द्रियों के धर्मों का त्याग करके तू मेरी शरण में आ जा। जो इन्द्रिय धर्मों में ही फंसा हुआ है वह भोगी है और जो इन्द्रियों के धर्मों को त्याग कर एकमात्र परमसत्ता की शरण में जाता है वह सच्चा योगी है। परम तत्त्व के दर्शन से जीव सब शोकों से मुक्त होकर मोक्षलाभ करता है। इस प्रकार गीता में प्रारंभ से अन्त तक ब्रह्मज्ञान का ही सविस्तार निरूपण है। भगवान् स्वयं गीता में ही कहते हैं **'अध्यात्मविद्या विद्यानां।'** अर्थात् मैं सब प्रकार की विद्याओं में अध्यात्म विद्या हूं। गीता की पुष्पिका में भी कहा गया है—

'ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे।'

ओम्तत्सद् रूपी जो ब्रह्म है उसकी विद्या ब्रह्मविद्या के अन्तर्गत योगशास्त्र यह गीतोपनिषद् है। इसका अर्थ ब्रह्मविद्या या ज्ञानयोग का आधार लेकर ही कर्मयोग गीता में प्रतिपादित किया गया है। ज्ञानयोग वह सुदृढ़ नींव है जिस पर निष्काम कर्मयोग का सुदृढ़ भवन खड़ा हो सकता है। यदि ब्रह्मज्ञान ही न हो तो निष्काम कर्मयोग का आधार ही कुछ न बचेगा। इसके विपरीत ऐसा नहीं कहा गया—

'योगशास्त्रे ब्रह्मविद्यायां' तो ब्रह्मविद्या की गोदी में ही योगशास्त्र अपना खेल खेल सकता है। बिना ब्रह्मविद्या के कर्मयोग कर्मभोग और कर्मरोग बन जाएगा।

ज्ञानयोग साधना

ज्ञान योग साधना—ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुछ साधना की आवश्यकता है।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।। 4/33, गीता

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।। 4/34, गीता

हे अर्जुन! ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए ब्रह्मज्ञानी गुरुओं के पास जाकर उनको प्रणिपात, (साष्टांग नमस्कार) करे इससे गुरुजनों की प्रतिष्ठा, शिक्षा की मर्यादा एवं शिष्य को अमोघ वरदानों की प्राप्ति होगी। गुरु के सामने नमन करने के पश्चात् आदरयुक्त भाव से गुरु से परिप्रश्न (जिज्ञासा) पूर्ति के लिए प्रश्नोत्तर

करना चाहिए। इसके पश्चात् गुरु की सेवा भी अनिवार्य है। गुरु सेवा ही गुरु पूजा है। मनु भगवान् का कथन है कि सेवा ही वह कुदाल है जिससे शिष्य गुरु के कपाल में संचित ज्ञान रत्नों को सुगमता से प्राप्त कर सकता है। तत्त्वदर्शी ज्ञानी ऐसे ज्ञान का उपदेश करते हैं जिससे तू समस्त भूत-प्राणियों को परम सत्ता में एकीभूत देखेगा और पुन: मोह को कभी प्राप्त नहीं करेगा।

ज्ञान साधना के लिए श्रद्धा अनिवार्य है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।। 4/39, गीता

जितेन्द्रिय तत्पर हुआ श्रद्धावान पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है। ज्ञान को प्राप्त होकर तत्क्षण भगवत्-प्राप्ति परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

ज्ञान के साधक में साधन चतुष्टय आवश्यक है।

(1) विवेक—नित्य-अनित्य विवेक, सत्-असत् में विवेक, आत्म-अनात्म में विवेक।

(2) वैराग्य—इहामुत्र फलभोग विराग—इहलोक तथा परलोक के सब सुख-भोगों में वैराग्य।

(3) षट् सम्पत्ति

(4) मुमुक्षुत्व

षड् सम्पत्ति—(क) शम, (ख) दम, (ग) उपरति, (घ) तितिक्षा, (ङ) श्रद्धा और (च) समाधान।

शम—अन्त:करण की विषयों में अरुचि उत्पन्न करके मन को विचलित न होने देना। यह मन की शान्ति अन्त:इन्द्रिय निग्रह है। सर्वकर्म निवृत्ति शम कहलाती है जिनका मन शांत नहीं वह ज्ञान का अधिकारी नहीं।

दम—दम का अर्थ है इन्द्रिय दमन। बाह्य इन्द्रियों को जिस मन की वृत्ति से वश में रखा जाता है अथवा लौटाया जाता है।

उपरति—बाह्य इन्द्रियों का विषयों की ओर अनुत्साह उत्पन्न करने वाली अन्त:करण की वृत्ति को उपरति कहा जाता है।

तितिक्षा—शीत, उष्ण, सुख-दु:ख आदि ये सब द्वन्द्व सम प्रकाश चिद्रूप ब्रह्म में नहीं है अत: मिथ्या हैं। इस ज्ञान के आधार पर इनको सहन करना तितिक्षा कहलाता है।

श्रद्धा—गुरु तथा शास्त्र में विश्वास को श्रद्धा कहते हैं।

समाधान—विषयों से लौटे मन का श्रवण-मनन आदि में, गुरु सेवा में, स्वाध्याय में, ध्यानसमाधि, चित्त की एकाग्रता आदि के द्वारा संदेह निवृत्ति तथा सत्य की बौद्धिक उपलब्धि ही समाधान है।

मुमुक्षुत्व—अहंकार से लेकर देह पर्यन्त जितने अज्ञान कल्पित बंधन हैं उनको अपने स्वरूप के ज्ञान द्वारा त्यागने की इच्छा मुमुक्षुत्व कहलाता है।

ऐसा साधन चतुष्टय से सम्पन्न जिज्ञासु जब ज्ञानी गुरु के पास जाता है तब गुरु से ब्रह्मज्ञान पाने में समर्थ होता है।

ज्ञानी गुरु की योग्यता—ब्रह्मविद्या प्रदान करने वाले गुरु को— '**ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः'।** 5/17 'ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं' 'ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः' 'ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा' ब्राह्मीस्थितिसम्पन्न स्थितप्रज्ञः 'सर्वभूतात्मभूतात्मा' 'ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः' श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए।

गुरवः बहवः सन्ति छात्रवित्तापहारकाः।
गुरवः विरला सन्ति छात्रहृत्तापहारकाः॥

अर्थात् ऐसे गुरु बहुत हैं जो छात्रों के धन का अपहरण करने वाले हैं। परन्तु ऐसे गुरु विरले हैं जो छात्रों के हृदय का ताप अपहरण करने वाले हैं। ऐसे गुरु के मौन उपदेश से भी छात्र के हृदय के सब संशय कट जाते हैं। गुरोःमौनोपदेशेन छात्र संच्छिन्नसंशयाः।

ज्ञान साधना का सर्वोच्च उद्देश्य एक ही है कि हमें चरम परम सत्य का दर्शन हो जाए और सत्य के दर्शन से हम प्रकृति के बंधन से मुक्त हो जाएं।

भगवान् कहते हैं—

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥ 4/39, गीता

अर्थात् ज्ञान प्राप्त होने के बाद मनुष्य बिना विलम्ब के तुरन्त परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

भेद एवं अभेद उपासना—भेद उपासना में जीव परमेश्वर को अपने से भिन्न मानकर उसकी उपासना करता है। इसमें जीव, माया और ब्रह्म का अन्तर बना रहता है। धीरे-धीरे माया का बंधन लुप्त हो जाता है। कितु भक्त भगवान् के अन्तर को वह या तू कहकर संकेत करता है। भेद उपासना में चार प्रकार की मुक्ति बतलाई गई है।

सालोक्य मुक्ति—भगवान् की वात्सल्य आदि भाव से उपासना करने वाले भगवान् के परमधाम में जाकर भगवान् का दर्शन पाते हैं, इसे सालोक्य मुक्ति कहते हैं।

सामीप्य—दास भाव या माधुरी भाव से उपासना करने वाले भगवान् के परमधाम को प्राप्त करते हैं, इसे सामीप्य मुक्ति कहते हैं।

सारूप्य—भगवान् के रूप को प्राप्त कर लेना सारूप्य मुक्ति है। इसमें भी भगवान् के तुल्य हो जाने पर भी भक्त भगवान् नहीं बन पाते। सखा भाव से उपासना करने वाले सारूप्य मुक्ति पाते हैं।

सायुज्य—पराभक्ति या अभेद उपासना द्वारा जीव ब्रह्म में मिलकर ब्रह्म रूप हो जाता है। जिस प्रकार नदियां समुद्र में मिलकर अपना नाम-रूप त्याग कर समुद्र रूप ही बन जाती है।

अभेद उपासना

अभेद उपासना के चार प्रकार हैं—

(1) सारा जगत् ब्रह्म रूप है—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।'

(2) निर्गुण निर्विकार परमात्मा माया से सर्वथा अतीत है—'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।

(3) सारा विश्व ब्रह्म रूप है और वह ब्रह्म मैं ही हूं—'अहं ब्रह्मास्मि।'

(4) परब्रह्म परमात्मा मेरा ही आत्मा है—'अयमात्मा ब्रह्म।'

जीवन्मुक्त के लक्षण—गीता में ज्ञान योग द्वारा जीवन्मुक्त होने वाले पुरुषों के लक्षण बताये गये हैं—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।। 6/29, गीता

भूतों में अपने आपको और अपने आप में सब भूतों का दर्शन करने वाला आत्मदर्शी होता है।

भगवान् कहते हैं जो सबमें मुझे देखता है और मुझमें सबको देखता है उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता और न वह मेरे लिए अदृश्य होता है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।। 6/30, गीता

इसी भाव को भगवान् पुनः कहते हैं—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।। 13/27, गीता

ऐसा व्यक्ति केवल मानवों में नहीं वरन् जीव मात्र में समदर्शी होकर ब्रह्म का दर्शन करता है।

परामुक्ति—इस ज्ञान के फल के रूप में मनुष्य अक्षय सुख को प्राप्त करता है।

स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते। 5/21, गीता

वह ब्रह्म से ज्ञान योग द्वारा जुड़ा हुआ आत्मा के अक्षय सुख को प्राप्त करता है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।। 8/13, गीता

'ओम्' इस एकाक्षर रूप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ तथा मेरा स्मरण करता हुआ जो (मनुष्य) शरीर को छोड़कर जाता है वह परम गति को प्राप्त होता है।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।। 8/16, गीता

इसमें कहते हैं पुनर्जन्म नहीं होता।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।। 14/2, गीता

भगवान् कहते हैं—इस ज्ञान का आश्रय करके मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए पुरुष न पुनः सृष्टि उत्पन्न होने पर उत्पन्न होते हैं और न प्रलय होने पर व्यथित होते हैं। अर्थात् वे शरीर के जन्म मरण से ही नहीं वरन् सृष्टि के प्रभव और प्रलय से भी परे परम पद को प्राप्त करते हैं।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। 15/6, गीता

इसमें भगवान् कहते हैं मेरा मोक्ष धाम ऐसा है जिसे सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि प्रकाशित नहीं कर सकते और उसे प्राप्त होने के बाद जीव फिर संसार में लौटकर नहीं आता है।

ज्ञान की सप्त भूमिका

महर्षि वसिष्ठ ने योगवासिष्ठ में ज्ञान की सप्त भूमिका का वर्णन किया है—

(1) **शुभेच्छा—**संसार की समस्त अशुभ इच्छा को त्यागकर केवल मोक्ष प्राप्ति की शुभ इच्छा करना। ग्रंथ के महावाक्यों का श्रवण करना इसे श्रवण भूमिका भी कहते हैं।

(2) **सुविचारणा—**शास्त्रों के श्रवण के पश्चात् उन पर मनन करना, विचार करना और अभ्यासपूर्वक सदाचार में प्रवृत्त होना। इसमें नेक विचार द्वारा असत् का त्याग करके सत् का मनन किया जाता है। इसे मनन भूमिका या विचारणा भूमिका कहते हैं।

(3) **तनुमानसा—**शुभेच्छा और विचारणा के द्वारा विषय भोगों में आसक्ति का अभाव हो जाने पर संसार में अनासक्त होकर विचरण करना तनुमानसा है।

इसमें मानस शुद्ध होकर सूक्ष्मता को प्राप्त होता है। इसलिए तनुमानसा कहते हैं। इसे निदिध्यासन भूमिका भी कहते हैं।

(4) **सत्त्वापत्ति—**श्रवण मनन निदिध्यासन के पश्चात् आत्मा का शुद्ध सत्य रूप परमात्मा में तद्रूप हो जाना सत्त्वापत्ति कहलाता है। भगवान् कहते हैं जो पुरुष आत्मा में ही सुखी है वह ब्रह्मभूत होकर ब्रह्म निर्वाण को प्राप्त करता है।

(5) **असंसक्ति—**बाहर और अन्दर के सभी विषय संस्कारों से असंग हो जाने पर अन्त:करण का समाधि आरूढ होना असंसक्ति है।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।। 4/19, गीता

भगवान् कहते हैं जिसके समस्त कर्म कामना और संकल्प से रहित होते हैं तथा जिसके सम्पूर्ण कर्म ज्ञान रूप अग्नि के द्वारा जल चुके हैं उसे ज्ञानीजन पंडित कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण परमहंस इस अवस्था में प्राय: रहते थे।

(6) **पदार्थाभाविनी—**अन्त:करण में संसार के पदार्थों का अत्यन्त अभाव हो जाता है। उसे संसार और शरीर के बाहर-भीतर का बिल्कुल ज्ञान नहीं रहता। किन्तु मन, बुद्धि ब्रह्म में तद्रूप हो जाते हैं। गाढ़ सुषुप्ति में भी पदार्थ भावना होती है। बाहर और भीतर के पदार्थों का कुछ भी भान नहीं होता। किन्तु उसमें ब्रह्मानन्द का सुख नहीं मिलता। वह तमोगुणमयी समाधि है। पदार्थाभाविनी में ज्ञानी गुणातीत अवस्था में होता है उसे ब्रह्म-वरीयान् कहते हैं।

(7) **तुर्यगा—**जब दूसरों के प्रयत्न करने पर भी नाम भेद रूप संसार की सत्ता की स्फूर्ति नहीं होती। मन बुद्धि ब्रह्म रूप हो जाते हैं। प्रकृति के तीनों गुण, शरीर और मन की तीनों अवस्थाएं, प्रकृति के पांच तत्त्व सबसे परे होकर ज्ञानयोगी ब्रह्म में विलीन रहता है। तब उसे तुर्यगा भूमिका कहा जाता है। ऐसा महापुरुष ब्रह्मविद्-वरिष्ठ अर्थात् ब्रह्म ज्ञानियों में सबसे श्रेष्ठ कहा जाता है। ऐसे महापुरुष से वार्तालाप न होने पर भी उनके दर्शनमात्र से जीवों का परम कल्याण हो जाता है। महर्षि रमण बहुत कम बोलते थे और श्री अरविन्द लगभग 40 वर्ष मौन रहे किन्तु वर्ष में एक दिन दर्शनमात्र करने से ही लोगों का जीवन रूपान्तरित हो जाता। सचमुच ज्ञान से अधिक पवित्र वस्तु सारे त्रिभुवन में दूसरी कोई नहीं है।

ब्रह्म, ईश्वर और जीव

जो माया के वश में है, वह जीव है। माया जिसके वश में है, वह ईश्वर है। जो माया से नितान्त परे है, वह ब्रह्म है। पारमार्थिक स्तर पर केवल शुद्ध ब्रह्म की

ही सत्ता है अन्य किसी की नहीं। किन्तु व्यावहारिक स्तर पर जीव, ईश्वर और प्रकृति का भेद मानना पड़ता है। निर्गुण निराकार निरुपाधि ब्रह्म तो पूर्ण निष्क्रिय सृष्टि के खेल का साक्षीमात्र है। सृष्टि की रचना, व्याख्या और संचालन के लिए ब्रह्म का ही एक रूप कारक ब्रह्म है। जो संकल्प मात्र से सृष्टि रचता है और संकल्प के लय होने से सृष्टि का लय करता है इसे ही ईश्वर नाम से समझाया जाता है। द्वैतवादी और त्रेतवादी तो प्रकृति और जीव की स्वतंत्र सत्ताएं मानते ही हैं किन्तु अद्वैतवादी जो जीव और प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता नहीं मानते वे भी इनके अस्तित्व की व्याख्या ब्रह्म के ही रूपान्तर के रूप में करते हैं। ब्रह्म की सर्जन शक्ति ही माया है जिसकी ब्रह्म से पृथक् स्वतंत्र सत्ता नहीं है। सर्वशक्तिमान के लिए अपनी योगमाया द्वारा संकल्पमात्र से ही सृष्टि रचना कोई कठिन या असम्भव बात नहीं है। सृष्टि रचना के उद्देश्य के बारे में विचारकों में मतभेद हो सकता है किन्तु कोई भी ईश्वरवादी ईश्वर के सृष्टि रचना के सामर्थ्य के बारे में मतभेद नहीं रखता। ईश्वर की योगमाया, उसका रचना कौशल उसकी अनिर्वचनीय सर्जनशक्ति है। केवल संकल्पमात्र से इतने बड़े विश्व को रच देना एक बड़ा इन्द्रजाल जैसा प्रतीत होता है। जादूगर की जादूगरी से जो रहस्यमय वस्तु निर्माण होती है वह जादू देखने वाले को भ्रम में डाल देती है किन्तु जादूगर स्वयं उससे कभी भ्रमित नहीं होता। अतः भगवान् की योगमाया भगवान् की ही शक्ति है। भगवान् की सृष्टि सभी को भ्रमित कर सकती है किन्तु स्वयं भगवान् को भ्रमित नहीं कर सकती। जैसे स्वप्न काल की सारी प्रिय-अप्रिय सृष्टि हमारे संकल्प में से ही पैदा होती है। उसके सब पात्र हमारे मन में से ही पैदा हो जाते हैं और विचित्र खेल खेलने लगते हैं। उसी प्रकार ईश्वर के संकल्प से ही ईश्वर की ही चेतना अंश जीव बनकर सृष्टि में कर्मलीला करने लगती है, जैसे स्वप्न में हम अपनी कल्पना से ही जंगल भी रच लेते हैं, उसमें शेर भी रच लेते हैं और स्वयं अपना रूप भी रच लेते हैं और शेर को हमारे शरीर पर आक्रमण करने का संकेत भी हम ही करते हैं और अपने शरीर को बचा कर भागने का संकेत और भय से चिल्लाने का इशारा भी हम ही करते हैं। स्वप्न काल में मित्र-शत्रु और उनके अनुकूल-प्रतिकूल व्यवहार सब हमारी कल्पना से ही पैदा होते हैं और आंख खुलते ही स्वप्न की सारी अच्छी-बुरी सृष्टि पल भर में इसी में लय हो जाती है। इसी प्रकार कारक ब्रह्म की सृष्टि उसके अपने ही अंश से बने जीव, उसी की योगमाया से भ्रमित हुए योगमाया की गोदी में ही मित्र-शत्रु के विचित्र खेल खेलते रहते हैं। और ब्रह्म के संकल्प खींचते ही जैसे जादूगर की जादूगरी सृष्टि के सब पात्र जादूगरी के साथ जादूगर के झोले में सिमट जाते हैं उसी प्रकार माया और माया के विस्तार में अनन्त जीव सभी अपने मूल अधिष्ठान ब्रह्म में लय हो जाते हैं।

नैतिक जीवन के लिए ईश्वर की महत्ता

विश्वव्यापी नैतिक सिद्धान्त को कहा जाता है—ऋतम्। और विश्व के चरम परम सत्य (परब्रह्म परमेश्वर) का एक शब्द में परिचय है—'सत्यं'। वेद में सत्यं और ऋतम् दोनों ब्रह्म के दो रूप बताये गये हैं। सत्य हमारा तात्त्विक आदर्श है और ऋतम् हमारा नैतिक आदर्श है। ये दोनों Goodness and Godliness एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। न सत्यम् के बिना ऋतम् टिक सकता है और न ऋतम् के बिना सत्यम्। जो ईश्वर नैतिकता की रक्षा नहीं कर सकता उसे ईश्वर ही कैसे माना जा सकता है। और जिस ईश्वर विश्वास में नैतिकता का कोई स्थान ही नहीं है वह ईश्वर विश्वास (धर्म) कैसे चल सकता है? दूसरी ओर यदि नैतिकता के संरक्षण के लिए विश्वव्यापी नैतिक सिद्धान्त का नियामक कोई सर्वशक्तिमान ईश्वर नहीं है तो ऋतम् या नैतिकता कैसे टिक सकती है? विश्वव्यापी नैतिक न्याय के लिए अनिवार्य है नैतिक शासन करने वाली सत्ता—

(क) सर्वव्यापक हो ताकि न्याय सृष्टि के प्रत्येक कोने में, प्रत्येक देश में, प्रत्येक काल में, प्रत्येक पात्र को मिल सके।

(ख) वह शक्ति सर्वान्तर्यामी हो ताकि मानव के अन्तरतम में जहां से अच्छे-बुरे कर्मों का संकल्प पैदा होता है वहीं से ही कर्म संकल्प रूपी बीजों को जान सके। वह शक्ति सर्वशक्तिमान हो ताकि कर्मों का फल देने में अथवा न्याय का निष्पादन करने में कोई धौंस-पट्टी न जमा सके न उस सत्ता को डस सके और न उसकी शक्ति को चुनौती दे सके।

इन तीनों दृष्टियों से नैतिक नियम के संचालन के लिए सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी और सर्वशक्तिमान ईश्वर की सत्ता अनिवार्य है।

जर्मनी के दार्शनिक कांट ने भी बहुत विचार मंथन के बाद निष्कर्ष निकाला कि नैतिकता के लिए ईश्वर इतना अनिवार्य है कि यदि ईश्वर न हो तो भी हमें ईश्वर की सत्ता का विश्वास करना ही पड़ेगा क्योंकि उसके बिना नैतिकता टिक ही नहीं सकती।

भारत में चार्वाक ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करता किन्तु चार्वाक दर्शन में नैतिकता का भी कुछ स्थान नहीं बचता।

बौद्ध दर्शन ईश्वर की सत्ता के बारे में मौन है। गांधी, राधाकृष्णन् आदि बुद्ध को ईश्वर विश्वासी मानते हैं। कोटि-कोटि हिन्दू उन्हें ईश्वर का अवतार ही मानते हैं। किन्तु कुछ बौद्ध दार्शनिकों ने उनके मौन का विपरीत अर्थ लगाकर उन्हें निरीश्वरवादी सिद्ध करने की चेष्टा की। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि इतना महान् नैतिक आन्दोलन अनैतिकता के गर्त में गिरकर गलने-सड़ने लगा। बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के मठों में खुलकर व्यभिचार एवं पापाचार पलने लगा।

अंगदेश (मुंगेर, भागलपुर के बौद्ध सिद्धों कणहपा, सिरहपा आदि) ने बौद्ध दर्शन में अपने धर्मग्रंथ की वाणियों में पंच मकार मद्य, मांस, मीन, मुद्रा, मैथुन की प्रशंसा लिखनी प्रारम्भ कर दी तथा इस अति सीमा तक लिखने लगे कि डोमनी या रजकी के साथ सम्भोग करने पर तुरन्त निर्वाण पद की प्राप्ति हो जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पुस्तक में ऐसे भ्रष्ट बौद्ध सिद्धों की वाणियों को उद्धृत किया है। इससे पता चलता है कि बिना दृढ़ ईश्वर विश्वास के नैतिकता का विश्वास भी कैसे सर्वनाश को प्राप्त हो जाता है।

जैन दर्शन साधना के आदर्श के रूप में ईश्वर को स्वीकार करता है। किन्तु सृष्टिकर्ता ईश्वर को नहीं मानता है और न कर्मफल प्रदाता, नैतिकता के नियामक ईश्वर को। जैन दर्शन अहिंसा, जीवदया का बड़ा सूक्ष्म विवेचन तथा कठोर पालन करता है। किन्तु उनकी दार्शनिक मान्यता यह है कि कर्मफल अपने आप प्राकृतिक सिद्धान्त के रूप में मिलता है। उसके लिए किसी ईश्वर को मानने की आवश्यकता नहीं। आग में हाथ डालने पर हाथ जलेगा ही चाहे ईश्वर चाहे या न चाहे। विष खाने पर मृत्यु होगी ही ईश्वर की इच्छा-अनिच्छा इसमें कोई बाधा नहीं डालती। शुद्ध दार्शनिक आधार पर जैन दर्शन नैतिक नियम की रक्षा नहीं कर सकता है। शंकराचार्यजी का प्रश्न है कि यदि देवदत्त ने सोमदत्त की हत्या कर दी तो इस हत्या का, कर्मफल का विधान कौन करेगा। मृतक तो गवाही दे नहीं सकता कि हत्या किसने की। खून भी गवाही नहीं दे सकता और छुरा भी साक्षी नहीं दे सकता। क्योंकि वह जड़ है। हत्यारा भाग जाता है और पकड़े जाने पर भी अपने को दोषी नहीं मानता। हत्या कर्म भी जड़ है। न वह हत्यारे को पहचानता है, न हत्या के पात्र को, न शस्त्र को। अब कौन निर्णय करे कि दोषी कौन है? हत्यारा चेतन है किन्तु बचने के लिए अपने को हत्यारा घोषित नहीं करता। यदि कर्मफल का निर्णय उसी पर छोड़ दिया जाए तो कोई हत्यारा अपने को फांसी नहीं लगवाना चाहेगा। इस तरह कर्म के दोषी का निर्णय और कर्मफल का निर्णय कर्म भी नहीं करता। उपादान (यंत्र) भी नहीं करता। सम्प्रदान भी नहीं कर सकता। केवल कर्ता कर सकता है यदि वह निष्पक्ष हो। कर्म, करण, क्रिया आदि सब जड़ हैं, कर्ता चेतन है पर निष्पक्ष कर्ता का मिलना ही दुष्कर है। अब मान लें सोमदत्त सौ व्यक्ति की हत्या करके स्वयं की हत्या कर ले उसे तो दुनिया का कोई विधान दण्ड दे नहीं सकता। इसलिए कर्म सिद्धान्त की प्रतिष्ठा रहनी है तो कर्म का नियामक निष्पक्ष न्यायकर्ता, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान होना चाहिए।

जो जैन बंधु व्यक्तिगत रूप में कुछ नैतिक आचरण का पालन करते रहते हैं वे धीरे-धीरे सनातन हिन्दू धर्म की इस मान्यता को मानने लगते हैं कि भगवान् सब कुछ देखता है और सब कर्मों का फल देता है। वे भगवान् महावीर को ही

भगवान् (ईश्वर) मानकर अपना नैतिक सिद्धान्त का काम निकाल लेते हैं। जो जैन बंधु नैतिकता का कठोरता से पालन करने का इच्छुक नहीं है उन्हें तो नैतिकता के नियामक ईश्वर के बिना अनैतिक कर्म करने का खुला मार्ग मिल जाता है। इसलिए समाज में प्रचलित धारणा है कि जैन लोग छोटे से छोटे जीवों को कष्ट न देने का आडम्बर भर रचते हैं। किन्तु निर्धनों का रक्त शोषण कर जीवित मानवों को खा जाते हैं। जैन धनपतियों के निर्धनों के शोषण और बड़े व्यापक आधार पर भ्रष्टाचार के अंग प्रकाश में आए हैं। निष्कर्ष यह है कि निरीश्वरवादी की नैतिकता अधिक देर तक टिक नहीं सकती।

कार्ल मार्क्स—कार्ल मार्क्स न आत्मा को मानता है न परमात्मा को। न पुनर्जन्म न कर्म सिद्धान्त को। बौद्ध और जैन एक परमात्मा को छोड़कर शेष तीनों आस्थाएं पक्की रखते हैं। जब निरीश्वरवादी आध्यात्मिक-नैतिक आन्दोलन होते हुए भी उनकी यह दुर्गति हुई तो जो मार्क्सवाद चारों को नहीं मानता उसकी क्या गति होगी?

अमेरीका के महान् दार्शनिक रेल्फ वाल्डो इमर्सन ने कहा है 'The begining and end of everything wrong with us is that we have forgotten God.' अर्थात् हमारी समस्त बुराइयों एवं समस्याओं का प्रथम एवं अन्तिम कारण यही है कि हम ईश्वर को भूल बैठे हैं। जो व्यक्ति सदा ईश्वर को हाजिर-नाजिर मानता है, जो यह अटल विश्वास रखता है कि प्रभु सर्वसाक्षी एवं सर्वान्तर्यामी हैं, वह पाप या कुकर्म करने से बचा रहता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—

राम झरोखे बैठि के सबका मुजरा लेत,
जैसी जाकी भावना वैसा ही फल देत।

परमेश्वर मानो कि इन्द्रिय रूपी झरोखों में भी बैठा हुआ है और अन्दर की इन्द्रिय (अंतःकरण) में भी बैठा हुआ सब खेल तमाशा देख रहा है। एक पिता अपने छोटे शिशु पुत्र के साथ प्रातःकाल सैर एवं स्नान के लिए गए। लौटती बेर उनके मन में इच्छा हुई कि खेत से एक मोटा तरबूज तोड़कर घर ले जाए। बच्चे को किसी के आगमन पर तुरन्त सूचना देने के लिए पहरेदार के रूप में खड़ा करके वह स्वयं खेत में तरबूज तोड़ने गया। बच्चे ने पुकारा, पिताजी! कोई देख रहा है। पिता ने वापस आकर देखा, वहां कोई व्यक्ति नहीं है। इस प्रकार वह दुबारा-तिबारा तरबूज तोड़ने गया। हर बार बच्चा ऊंचे स्वर में चिल्लाता है कि कोई देख रहा है। पिता ने उसे व्यर्थ का उपहास मानकर बच्चे को थप्पड़ लगाया—कौन देख रहा है? अपने पिता से क्यों मजाक करते हो? बच्चे ने कहा, पिताजी! आपने ही मुझे पढ़ाया था कि ईश्वर सब कुछ देखता है। यह सुनकर पिता-पुत्र

के चरणों में झुक गया। इस प्रकार ईश्वर की सत्ता में अटल विश्वास मनुष्य को नैतिकता में बांधे रखता है।

गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं—

कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा।।

2/248/4, मानस

पुनः लिखते हैं—

तुलसी काया खेत है, मन वच कर्म किसान।
पाप-पुण्य दो बीज है, बुवे तो लुने निदान।।

महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं—

यश्च रामं न पश्येत यं च रामो न पश्यति।
निंदिता स वसेत लोके स्वात्मन्येव विगर्हितः।।

अर्थात् जो राम को नहीं देखता और राम जिसकी ओर नहीं देखते वह लोक में निन्दित होकर जीता है तथा उसका अन्तरात्मा भी उसे धिक्कारता है। संसार का तिरस्कार और अन्तरात्मा का धिक्कार उसे मिलता है जो राम को हाजिर-नाजिर नहीं मानता। गुरु नानकदेवजी ने लिखा है—

परमेश्वर तो भुल्ल्यां ब्यापन सबै रोग।
छिण में कड़वे हो गये जेते माया भोग।।

परमेश्वर को भूलने से ही संसार के सब रोग आदमी को जकड़ लेते हैं। जिन संसार के भोगों को मनुष्य ईश्वर को भुलाकर भोगना चाहता है वही भोग क्षण भर में कड़वे सिद्ध हो जाते हैं और महारोगों के कारण बनते हैं। भोगों के लिए भगवान् को भुलाया तो न भगवान् ही मिले और न भोग ही बचे। ये भोग ही कड़वे रोग बन गये।

दीन गवाया दुनि से, और दुनि न चली साथ।
पांव कुल्हाड़ा मारया, नानक अपने हाथ।।

पैसे-परिवार के लिए धर्म को छोड़ा। नीति को छोड़ा। भगवान् को छोड़ा। संसार के लिए धर्म और नैतिकता को छोड़ा। किन्तु संसार मरने पर साथ नहीं जा सकता। इस प्रकार जीव अपने हाथ से ही अपने पांव पर कुल्हाड़ा चला रहा है।

जपुजी साहब में गुरु नानकदेव ने लिखा है—

पवन गुरु पानी पिता, धरती मात महत
दिवस रात गोऊ दाई गाया खेले सकल जगत
चगिचारया बुराइया बाचे धर्म दूर
कर्मी आपो आपनी कै नेड़े के दूर।

इसमें माता की धरती से उपमा दी गई है। पिता की जल से और गुरु की पवन से। धरती और पानी के संयोग से पेड़-पौधे, वनस्पति पैदा होते हैं किन्तु उनका ऊपर की ओर विकास गुरु रूप पवन पर निर्भर करता है। दिन और रातरूपी दाई (नौकरानी के समान है) जो जीवों को खेल खिला रही है। दिन की दाई बच्चे को बग्घी में डालकर खेल खिलाने या सैर कराने ले जाती है और रात्रिकाल की दाई जीव रूपी बच्चे को थपकी देकर, लोरियां गाकर सुला देती है। प्रसिद्ध उक्ति है कि दाई से पेट नहीं छिपाया जाता। बच्चे के प्रसव के समय जो नर्स या Mid wife सहायता करती है उसे ही दाई कहा जाता है। उस समय शिशु की माता प्रसव पीड़ा में व्यथित या बेहोश रहती है। प्रसव का सारा कार्य दाई ही करती है। उस समय दाई से माता का पेट नहीं छिपाया जाता। इसी प्रकार दिन अथवा रात को पुरुष जो कुछ अच्छे-बुरे कर्म करता है दिन और रात उसके साक्षी हैं। परमेश्वर सब देखता है। उससे कुछ भी छिप नहीं सकता है। मनुष्य की अच्छाइयों और बुराइयों का ही धर्म के दरबार में विचार किया जाएगा। उन्हीं अच्छे-बुरे कर्मों के आधार पर ही कोई ईश्वर के अधिक निकट पहुंचता है और कोई दूर ही रह जाता है।

स्वामी रामतीर्थ का कथन है, 'हे मानव! दस पर्दों में छिपकर कोई गुनाह करे और सोचता रहे कि तुझे किसी ने देखा नहीं तो तेरे पांव के नीचे की घास खड़ी होकर गवाही दे देगी कि तुमने अमुक गुनाह किया है।' वे पुनः लिखते हैं 'Disease is to be dis-at-ease with God.' अर्थात् परमेश्वर के साथ सहज सरल सम्बन्ध का टूट जाना ही बीमारी है। गीता में भगवान् कहते हैं—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च। 8/7, गीता

—सब कालों में मुझे स्मरण करता हुआ युद्ध कर।

ईश्वर को निरन्तर स्मरण करके कर्म करने से कर्म धर्म बन जाएगा। वह कर्म ही परमेश्वर की पूजा बन जाएगा। ईश्वर के साथ मन की तार के टूटते ही कर्म कुकर्म, क्रूर कर्म, अन्याय कर्म बन जाएगा। गीता की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसमें ज्ञान कर्मसमुच्चय पर बल दिया गया है। ऊंचे से ऊंचे ब्रह्मज्ञान को जीवन के भीषण से भीषण कर्तव्य कर्म (महायुद्ध के साथ) समन्वित करके दिखाना गीता की विशेषता है। सामान्य व्यक्ति अपनी स्वाभाविक कठिनाई बता सकता है कि यदि भगवान् का स्मरण करेंगे तो युद्ध जैसा भीषण कर्म कैसे कर सकते हैं? भगवान् का स्मरण शांत चित्त से हो सकता है। युद्ध क्रोध एवं आवेश में हो सकता है। दोनों का मेल कैसे बैठाया जाए। गीता में यही विशेषता है कि इसने सर्वोच्च ज्ञान का सबसे कठिन कर्म के साथ मेल का मात्र सिद्धान्त कथन ही नहीं

किया वरन् प्रत्यक्ष इतिहास में उसको सफल ढंग से प्रयोग करके दिखा भी दिया। प्रारम्भ में अर्जुन क्रोध एवं द्वेष से भरकर युद्ध भूमि में प्रविष्ट हुआ था। उसने कहा, भगवान्! मुझे शक्ल तो दिखाओ कौन माई के लाल मेरे से लड़ने के लिए आए हैं। जब उसने देखा कि अपने ही स्वजन और गुरुजन सामने शत्रु की पंक्ति में खड़े हैं तब उसके मन में मोह एवं राग उत्पन्न हो गया। तब हथियार फेंककर युद्ध भूमि से भागने का विचार करने लगा। भगवान् ने कहा, हे अर्जुन! न हम तुम्हें द्वेष से मारने देंगे न राग के कारण भागने देंगे अर्थात् राग-द्वेष दोनों को एकतरफ छोड़कर शुद्ध कर्तव्य भावना से प्रभु को स्मरण करते हुए कर्म करो। प्रभु के फूल प्रभु के चरणों में चढ़ाने के लिए स्वधर्म पालन में महायुद्ध लड़ो। यह बहुत क्रियात्मक जीवन दर्शन है। ईश्वर को भुलाकर युद्ध सत्य रूप न रहकर केवल नृशंसता, सर्वसंहार बन जाएगा। कर्म से भागकर केवल ईश्वर के स्मरण की माला जपते रहने से यह नैतिकता विरोधी ढोंग बन जाएगा। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को कर्तव्यबोध दिया। गुरु गोविन्द सिंह ने दक्षिण में माला जपने वाले बंदावैरागी का कर्तव्यबोध जगाया। योगवासिष्ठ में महर्षि ने श्रीराम को भी ऐसा कर्तव्यबोध दिया। गुरु गोविन्द सिंह कहते हैं—

'धन्य जिओ तिंह को जग में, मुख ते हरि चित्त में युद्ध विचारे।'

अर्थात् जगत् में उसी का जीवन धन्य है जो मुख से हरि का स्मरण करते हुए चित्त में संसार के कर्तव्य संग्राम के लिए सदा प्रस्तुत रहे। यह गीता के ही भाव का पुनर्कथन है।

एक बार कविवर रहीम ने गोस्वामी तुलसीदासजी से पूछा—

काज करे संसार के मिलन चहत करतार।
कह रहीम कैसे निभे दो रथ एक सवार।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने उत्तर दिया—

काज करे संसार के, प्रभु पर राखे टेक।
तुलसी यों निभ जाएंगे दो घोड़े रथ एक।।

लोक में भी प्रसिद्ध उक्ति है—

कर से कर्म करो विधि नाना। मन राखो जहां कृपा निधाना।।

इस प्रकार ईश्वर का निरन्तर स्मरण शुभ कर्म में, धर्म कर्म में बाधा न देकर कर्तव्य पालन को बल एवं अक्षय प्रेरणा प्रदान करता है। यदि भगवत्स्मरण कुछ बाधा डालता है तो केवल कुकर्म में ही।

मानव जो भी अच्छा-बुरा कर्म करे भगवान् को स्मरण करके करे। तो धीरे-धीरे कुकर्म अपने आप छूट जाएंगे। सूर्य के प्रकाश में या साधारण दीपक के प्रकाश

में बड़े से बड़े चोर को चोरी करने में संकोच होने लगता है। उसे प्रकाश से भय लगने लगता है। जब परमेश्वर ज्योतियों की परम ज्योति है उनके स्मरण से क्या कोई कुकर्म टिक सकेगा। ईशावास्योपनिषद् में जो सब उपनिषदों का शिरोमणि है, जिसके प्रथम मंत्र को गांधी सार-सर्वस्व मानते हैं, कहा गया है—

ईशा वास्यमिदँ सर्वम्

जगत् में जो कुछ स्थावर जंगम है सब ईश्वर द्वारा निर्मित है। ईश्वर का है। ईश्वर द्वारा आच्छादित है और ईश्वर की गोदी में है। इसलिए निरन्तर उसको स्मरण कर और निरन्तर समर्पण की भावना से संसार के भोगों को भोग। ईश्वर का निरन्तर स्मरण अपने आप ईश्वर के प्रति समर्पण बन जाता है। ईश्वर स्मरण करने से जीव को स्मरण होता है कि मैं ईश्वर का ही अंश हूं। जब मैं ही उनका हूं तो मेरे कर्म भी उन्हीं के हो गए।

अतः स्मरण अपने आप में समर्पण होता है। जिस बुलबुले को यह स्मरण हो जाता है कि मैं सिन्धु का जल हूं तो बुलबुले की सारी लीला अपने आप जल की लीला ही बन जाती है।

आमी रथ तुमी रथी
चालाओ जेमन इच्छा करे।
आमी यंत्र तुमी यंत्री
बजाओ जेमन तुमार इच्छा करे।

श्री अरविन्द ने भी गीता दर्शन में यही भाव प्रतिपादित किया है कि साधक को भागवत न्याय का यंत्र बनकर भगवान् की स्मृति प्रीति के लिए समस्त कर्म करना चाहिए। इससे उसके कर्म भागवत कर्म बन जाएंगे और भगवान् की अपनी अनन्त शक्ति उसके कर्मों में अपना चमत्कार दिखाने लग जाती है।

जीव भगवान् को केवल अपना अहंकार भर चढ़ाता है और बदले में भगवान् अपनी अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य साधक पर लुटा देते हैं।

ईश्वर विश्वास और भिन्न पंथ सम्प्रदाय

धर्म शब्द बड़ा व्यापक है इसका सरल अर्थ कर्तव्य है। और इसका भावार्थ है शरीर से लेकर ब्रह्मपर्यन्त समस्त कर्तव्यों की विधिवत परिपूर्ति। शरीर के 7 कर्तव्य हैं—

शौच, स्नान, व्यायाम, भोजन, परिश्रम, सेवा और विश्राम।

शरीर धर्म से ऊपर परिवार धर्म या कुलधर्म है। परिवार की सेवा, सुरक्षा एवं प्रतिष्ठा धर्म है।

इससे ऊपर जाति धर्म उसकी सेवा, सुरक्षा एवं प्रतिष्ठा
इससे ऊपर राष्ट्र धर्म उसकी सेवा, सुरक्षा एवं प्रतिष्ठा
इससे ऊपर मानव धर्म उसकी सेवा, सुरक्षा एवं प्रतिष्ठा
इससे ऊपर विश्व धर्म उसकी सेवा, सुरक्षा एवं प्रतिष्ठा

विश्वनाथ—विश्व के स्वामी विश्वम्भर की पूजा प्रतिष्ठा।

धर्म उन शाश्वत नैतिक सिद्धान्तों का संग्रह है जिसने समाज को धारण कर रखा है। जैसे किसी परिवार, संस्था या राष्ट्र से उसके कर्तव्य को निकाल दिया जाए तो वह संस्था क्षण भर में ध्वस्त हो जाएगी। इसलिए धर्म केवल वह नहीं है जिसे हमने धारण कर रखा है। वरन् वह है जिसने हमें ही धारण कर रखा है। आजकल लोकतंत्र के जमाने में पंच, सरपंच, मुखिया, विधायक, सांसद, मंत्री, प्रधानमंत्री सभी का हम चुनाव करते हैं। व्यक्ति जीवन में मित्र-शत्रु, पति-पत्नी, साझीदार एवं गुरु तक का चुनाव करते हैं किन्तु माता का चुनाव कोई नहीं कर सकता। हम माता का चुनाव क्या करेंगे, माता ने ही हमें चुनकर धारण किया है। धर्म माता के तुल्य है। इसे सहज धर्म, जन्म से ही प्राप्त धर्म कहा जाता है। यह वस्तुओं के समान नहीं है जिन्हें जब चाहे धारण करें जब चाहे उतार दें। धर्म हमारे धारण करने की वस्तु नहीं है वरन् वह शाश्वत नियम है जिसने सारे विश्व को धारण कर रखा है।

पश्चिम में धर्म का पर्यायवाची शब्द नहीं है। उनके शब्द Religion का अर्थ है Path of God realisation अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग जिसे पथ, पंथ, मजहब भी कहा जाता है। लक्ष्य एक होते हुए भी पहुंचने के पथ अनेक हो सकते हैं—

संत पंथ सब जगत् के बात बतावत तीन।
ईश भजन सब पर दया धर्म सेवा में लीन।।

अत: सेवा, स्मरण एवं दया सब पंथों का सार है। इहलोक में जनकल्याण के लिए दया और सेवा, परलोक या ईश-प्राप्ति के लिए ईश स्मरण।

भिन्न-भिन्न पंथों में ईश्वर का स्वरूप, उसके नाम और गुण की चर्चा भिन्न-भिन्न भाषाओं में थोड़ा भिन्न रूप में की गई है। ग्रंथों में ग्रंथ के संस्थापक पैगम्बर की पूजा प्रतिष्ठा का स्थान बन गया है किन्तु सभी ईश्वर प्राप्ति या स्वर्ग प्राप्ति का लक्ष्य मानते हैं। यदि ईश्वर है ही नहीं तो पंथ किस लक्ष्य की ओर ले जाता है। पहले लक्ष्य का निश्चय करके उस ओर जाने वाले पंथ का निर्माण किया जाता है। अत: बिना ईश्वर में विश्वास के कोई पंथ चल नहीं सकता। यदि मुंबई नगरी ही न हो तो मुंबई मेल हमें कहां पहुंचाएगी? जब Religion ईश्वर प्राप्ति का पंथ है तो ईश्वर सब पंथों का समान लक्ष्य है।

कुछ पंथ निरीश्वरवादी पंथ दिखाई देते हैं किन्तु वास्तव में वे निरीश्वरवादी होकर धर्म या पंथ नहीं रह सकते हैं। और कोई धर्म पंथ रहकर चल नहीं सकता। चार्वाक दर्शन है, पंथ नहीं। बौद्ध दर्शन में भगवान् बुद्ध के ईश्वर के विषय में मौन की भ्रान्त व्याख्या की गई। कई विचारक बुद्ध को ईश्वरवादी मानते हैं, जिन्होंने निरीश्वरवादी माना उन्हें भी धर्म पंथ को जीवित रखने के लिए एक ईश्वर की आवश्यकता थी। इसलिए उन्होंने स्वयं बुद्ध को ही भगवान् कहकर ग्रंथों में प्रचारित और मन्दिरों में प्रतिष्ठित कर दिया। यदि वे ऐसा न करते तो बौद्ध धर्म मर जाता। भगवान् बुद्ध नैतिकता के पक्षधर थे। उन्होंने जोर दिया Idol worship के स्थान पर आदर्श पूजा (Ideal worship) पर। पर उनके बाद शिष्यों ने धर्म को चलाने के लिए उन्हीं भगवान् बुद्ध की संसार में सबसे अधिक और सबसे विशाल मूर्तियां बना दी। बुद्ध की मूर्तियों का इतना प्रचार हुआ कि संस्कृत के बुद्ध शब्द से ही अरबी 'बुत' बन गया जिसका अर्थ ही मूर्ति है।

इसी प्रकार जैन धर्म चाहे लक्ष्य रूप में भगवान् को मानता है किन्तु उनका सारा धर्म भगवान् महावीर या अन्य तीर्थङ्करों को भगवान् मानकर चल रहा है। जिस प्रकार लक्ष्य विहीन पंथ की कल्पना भी कठिन है, लक्ष्यहीन यात्रा आवारागर्दी गिनी जाती है। उसी प्रकार ईश्वर विहीन धर्म, ईश्वर विहीन धर्म सम्प्रदाय एक कठिन एवं निराधार कल्पना मात्र रह जाती है। आधुनिक काल का पंथ देव समाज पंजाब के कुछ भागों में निरीश्वरवादी शैली से चल रहा है। किन्तु उन्होंने भी अपना लक्ष्य देवात्मा को निर्धारित किया है। ये उनके संस्थापक का गूढ़ वाचक नाम है। कौन जाने कालान्तर में उसी व्यक्ति विशेष देवात्मा की मूर्तियां वैसे ही पुजने लगे जैसे बुद्ध और महावीर की पूजी जाती हैं। अतः धर्म सम्प्रदाय, ईश्वर या ईश्वर की विभूति को केन्द्र मानकर ही खड़ा होता है तथा इसके बिना उसका चलना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव-सा हो जाता है। लोक से किसी लोकोत्तर शक्ति में, मानव से ऊपर किसी मानवेत्तर सत्ता में विश्वास रख उसकी प्राप्ति की साधना ही धर्म सम्प्रदाय का मूल स्वरूप है।

J.H. Holmes कहते हैं कि 'मैं तीन कारणों से नास्तिक नहीं हूं। पहला कारण यह है कि जीवन के प्रति नास्तिकता का सिद्धान्त अनुर्वर और रूढ़ि ग्रस्त होता है। दूसरा कारण यह है कि जीवन के प्रति नास्तिकों का दृष्टिकोण पूर्ण रूप से नकारात्मक होता है। और तीसरा कारण यह है कि नास्तिकता किसी भी मर्म का उद्घाटन नहीं कर सकती। किन्तु सृष्टि का तकाजा है कि इसके रहस्यों का उद्घाटन किया जाए।'

गीता का विदेशों में प्रभाव

गीता विश्व के अध्यात्म रत्नों की वह अलौकिक रत्न मंजूषा है जिसमें एक विचार रत्न की पावन प्रभा पर विश्व का धार्मिक एवं दार्शनिक वाङ्मय न्योछावर हो जाय। गीता के विषय में स्वयं गीतोपदेश में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—

'गीता मे 'हृदयंपार्थ' गीता मे 'शास्त्रमुत्तमम्'

अर्थात् हे पार्थ! गीता मेरा सर्वोत्तम शास्त्र है, इतना ही नहीं यह मेरा साक्षात् हृदय ही है।

कुरुक्षेत्र की रणस्थली में अर्जुन के धर्मयुद्ध से लेकर आधुनिक काल में लोकमान्य तिलक, खुदीराम बोस, सुभाषचन्द्र बोस आदि के स्वातंत्र्य युद्ध तक, भगवान् वेद व्यास के वेदांत दर्शन से लेकर योगीराज अरविन्द के योग दर्शन तक, शंकराचार्य जैसे भारतीय महामनीषी से लेकर आल्डुअस हक्सले (Alduas Haxley) जैसे पाश्चात्य विचारक तक गीता के शाश्वत संदेश ने सभी कर्म वीरों, धर्म संस्थापकों एवं विचार सृष्टाओं को चमत्कृत किया है। भारतवासियों की गीता भक्ति तो स्वाभाविक एवं सर्वविदित ही है किन्तु विधर्मियों एवं विदेशियों की गीता के प्रति अलौकिक निष्ठा गीता की सार्वभौमिकता का अकाट्य प्रमाण है।

लंका, बर्मा, थाईदेश, कम्बुज, लवदेश, मलाया, सिंगापुर आदि देशों में सर्वत्र भगवान श्रीकृष्ण के मंदिर तथा गीता के सत्तर भाषाओं में अनुवाद प्रचारित हैं। कम्बुज में संसार का सबसे बड़ा हिन्दू मंदिर है अंकुटबार।

प्रसिद्ध दर्शन विद्वान श्री कैखुशस जे. दस्तूर का कथन है—गीता केवल हिन्दुओं का ही नहीं अपितु संसार की जातियों की धर्म पुस्तक है। गीता की एक-एक पंक्ति, एक-एक शब्द पवित्र विचारों से सुरक्षित है। आध्यात्मिकता इसमें एक छोर से दूसरे छोर तक स्वर्ण सूत्र की तरह ओत-प्रोत है। गीता को यदि दिव्य ज्ञान की खान कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

प्रख्यात फारसी चिन्तक प्रोफेसर फिरोज कावस जी दावर ने लिखा है—यह भी दिखता है कि अन्ततोगत्वा विज्ञान धर्म का बाधक न होकर साधक ही होगा और धर्मोन्माद के स्थान पर वास्तविक विश्वधर्म की प्रतिष्ठा होगी जिसमें सर्वधर्म समान

रूप से योग देंगे। उस समय मानव मात्र के लिये जब एक अखिल विश्व धर्म की प्राण प्रतिष्ठा होने लगेगी तब हमें एक मात्र गीता का ही सहारा रह जाएगा क्योंकि यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि विश्व धर्म के मौलिक प्राण तत्त्वों का जितना सुन्दर समावेश गीता में है उतना किसी भी अन्य धर्म के किसी भी धर्म ग्रंथ में नहीं है।

सम्राट् अकबर के काल में प्रसिद्ध फारसी विद्वान फैजी ने गीता का अनुवाद किया। लाहौर के ख्वाजा दिलमुहम्मद ने गीता का उर्दू पद्य में अनुवाद करते हुए लिखा—

मुसीबत से सबको बचाती है गीता
पायमे सदाकत सुनाती है गीता
जो गिरते हैं गलती से इस सरजमीं पर
उठाकर फलक पर बिठाती है गीता।

चार्ल्स विल्किज ने गीता का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद किया जिसकी भूमिका में गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने लिखा—भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के ध्वस्त हो जाने के उपरान्त भी भारतीय दर्शन के अमर गायक पूजे जाते रहेंगे। इस गीता से अमरीका का इमर्सन तथा उनके गुरु तुल्य मित्र थोरो बड़े प्रभावित हुए। थोरो कहता है—मैं प्रतिदिन प्रातःकाल गीता के अमृतकुण्ड में स्नान करता हूँ। इमर्सन जब इंग्लैण्ड में कार्लायिल से मिलने गया तो दोनों ने परस्पर एक-दूसरे को गीता भेंट की।

इंदोनीजिया की स्वाधीनता के अवसर पर लोगों ने हाथों में गीता लेकर स्वाधीनता की रक्षा की शपथ ली थी तथा राष्ट्रपति सुकर्ण ने कहा—हममें अर्जुन का बल और कृष्ण की बुद्धि है।

जापान में शिन्तो धर्म पर भी गीता का प्रभाव है। विगत महायुद्ध में जापान का एक पनडुब्बी चालक जब युद्ध में बलिदान हेतु जा रहा था तो एक भारतीय नेता के पूछने पर उसने जेब से गीता की पोथी निकाल कर दिखाई और बताया—यह अमरता का रक्षा कवच है। जब तक हम इसे जानते हैं, हम मृत्यु नाम की किसी वस्तु को जानते नहीं।

चीन के कन्फ्यूशियस धर्म एवं ताओ धर्म पर भी गीता के सत्-विवेक तथा शासक की कार्यक्षमता के समन्वय का संदेश है। चीन में प्रथम शती में महायान बौद्ध धर्म के साथ गीता भी पहुँची तथा चीनी भाषा में अनूदित हुई।

जर्मन दार्शनिक शोपनहावर तथा काण्ट के दर्शन पर गीता के कर्तव्यवाद या निष्काम कर्मयोग की स्पष्ट छाप है। अमरीका के क्रिस्टोफर ईशरवुड को गीता के

तत्त्वज्ञान ने आत्महत्या से बचाया तथा हक्सले ने गीता को सच्चे अर्थ में 'शाश्वत दर्शन' की संज्ञा दी। यह एक अत्यंत विस्मयकारी तथ्य है कि 16 जुलाई 1945 को (जल) अमरीका के न्यू मैक्सिको रेगिस्तान में प्रथम अणुबम का परीक्षण किया जा रहा था तो आविष्कारक राबर्ट ओपेनहीमर ने ज्यों ही आकाश में अनन्त सूर्यों के प्रकाश के समान प्रचण्ड अग्नि ज्वालाओं को बम के विस्फोट के साथ ही देखा तो उन्हें गीता के विराट रूप दर्शन की स्मृति हो आई और वे जेब से गीता निकालकर एकादश अध्याय का श्लोक गाने लगे—

दिवि सूर्य-सहस्रस्य, भवेद्-युग-पदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्-भासस्-तस्य महात्मनः11/12

कालोऽस्मि लोकक्षय कृत्प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तु-मिह प्रवृत्तः।11/32

मुझे भूगोल पढ़ाने में भिन्न-भिन्न देशों की जानकारी करनी पड़ती थी। उसके साथ उन देशों का परिचय भी करना पड़ता था। इस तरह मैं भारत से परिचित हुआ। मैं जैसे-जैसे उसका अध्ययन करता गया वैसे-वैसे उसके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती गयी....मैंने उसके तत्त्वचिंतन में रुचि ली। गीता और उपनिषदों का फ्रेंच भाषा में जो अनुवाद छपा, मैंने उसे पढ़ा और उसने मुझे आजीवन विस्मृत रखा।

—जर्मन दार्शनिक, कांट

गीता की विविध क्षेत्रों में प्रतिष्ठा

विश्वमनीषा का श्रेष्ठ सम्पद् श्रीमद्भगवत्गीता भारतीय शाश्वत संस्कृति का निर्यास (रस, नवनीत)। जगत् के सारस्वत समाज को भारत का श्रेष्ठ दान यह सद्ग्रंथ। बहुदिन पहले प्रतीचच्भूखण्डे अंग्रेज मनीषी कार्लाइल मार्किन मनीषी इमर्सन के साथ साक्षात् के समय गीता उपहार के माध्यम से परस्पर सौहार्द को सुदृढ़ करते हैं। विश्व के समुन्नतषटत्रिःशत भाषा में इस ग्रंथ का प्रायः तीन सहस्र संस्करण हुआ है। विश्व के इतिहास में यथार्थ गण साहित्य यह गीता है। पण्डित-मूर्ख, धनी-दरिद्र, स्त्री-पुरुष, शिक्षक-सैनिक, कर्मी-व्यवसायी, छात्र-श्रमिक, त्यागी-भोगी सकल के पास इस ग्रंथ का आवेदन (या वक्तव्य) है। निर्जन गुहावासी, निष्किन्चन तपस्वी से राजप्रासादवासी-धनी, सर्व कर्म-त्यागी साधु से लेकर सदा कर्मनिष्ठ राजनीतिक नेता पर्यन्त सभी जीवन का पाथेय इस गीता से प्राप्त करते हैं। गीता मानव समाज का ज्ञान-कल्पतरु। इसलिए युग-युग से गीता के ऊपर रचित हुआ है असंख्य भाष्य। मनीषी द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर गीता को बोलते हैं भारत के कुटीर का बिना तेल का प्रदीप। महात्मा गांधी के मत में गीता है शान्ति एवं शक्तिप्रदायनी माता। अध्यात्म जगत् में गीता की साधना सुविदित है। किन्तु देश के राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम एवं आन्तर्जातिक मैत्री साधना में गीता की अनन्य असाधारण भूमिका अविस्मरणीय है। गीता के निष्काम कर्मयोग, आत्म समर्पण योग आत्मतत्त्व एवं स्थितप्रज्ञत्व के आदर्श के द्वारा भारत के स्वाधीनता संग्राम में मुक्तियोद्धाओं को उद्बुद्ध किया था। भारत का प्रायः सकल विप्लव का अवश्य पाठ्यग्रंथ था यह गीता। पुनः अहिंस्र संग्रामीगण को भी गीता की वाणी से मिली है आदर्श की प्रेरणा। सहिंस्र एवं अहिंस्र भारत के मुक्तिसंग्राम के उभय पथ के पथिकों के पथ का पार्थक्य रहने से भी लक्ष्य एक, वैसी पाथेय भी एक और वह था श्रीमद्भगवत्गीता? तभी विप्लवी योगी ऋषि अरविन्द, चरमपंथी नेता लोकमान्य तिलक, पुनः अहिंसा संग्रामी महात्मा गांधी, भूदान आन्दोलन के प्रवर्तक निरीह विनोबा भावे गीता का प्रवचन के लिये समुत्सुक रचना की है। स्व-स्व आदर्श के आलोक में गीता का विशाल भाष्य। बाल्यावस्था से गीताध्यायी—महासंग्रामी नेताजी सुभाषचन्द्र कांग्रेस के नेता के हिसाब से कारागार में सहकर्मी तरुण गणों

को नित्य गीता पाठ के लिये प्रवर्तना देते हैं। पुनः आजाद हिन्द फौज के महानायक रूप में रणक्षेत्र में बमवर्षण के बीच में पाकेट में एक छोटी गीता आलेख्यधृता माता कालिका एवं तुलसी मालिका। खुदीराम, कन्हाईलाल, विनय-बादल-दिनेश, प्रफुल्ल प्रभृति दधीचि के दल में एवं जेल में गीता का नित्यपाठ करते थे। अवेस्ता, बाइबिल, कुरान, त्रिपिटक आदि इस प्रकार प्रत्यक्षरूप से देश के राष्ट्रीय मुक्तिसंग्राम में मरणपण सैनिकों को प्रबुद्ध किया या नहीं, जानता नहीं। लेकिन इतना बोलता हूँ कि गीता सिर्फ धर्म ग्रंथ नहीं है—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा चतुर्वर्ग तथा सामग्रिक जीवन पथ का समयसारणी तथा टाइम-टेबुल सकल पथ के यात्रियों का अपरिहार्य ग्रंथ। सिर्फ व्यक्तियों या राष्ट्र विशेष का नहीं, समग्र विश्व का संकट निरसन के लिए अपरिहार्य ग्रंथ है। विश्व शांति एवं विश्व कल्याण की दृष्टि से राष्ट्रसंघ (U.N.O.) की प्रतिष्ठा। उसके उद्देश्य को लेकर राष्ट्रसंघ के प्राक्तन सेक्रेटरी जेनरल स्वर्गत दयाग् हयामारशिल्ड् बोलते हैं—फलाकांक्षा करके कर्म करने की अपेक्षा फलाशा त्याग कर कर्म करना बहुत अच्छा है। यह उपदेश सभी युग में सभी दर्शन की चूडान्त कथा है। राष्ट्रसंघ के प्रबल प्रचेष्टा से हम लोग यदि गीता का यह उपदेश अनुसरण कर चल सके तभी हम लोग सुखी होंगे।

The Bhagavad Gita echoes on experience of all ages and all philosophies when it says-work with anxiety about results is far inferior to work without such anxiety, an calm self-surrender. These words expressed deep faith and we will be happy if we can make that faith ours in all our efforts.

जर्मनी के आणविक वैज्ञानिक ओपेनहाइमर ने गीता का श्लोक पाठ करके लब्ध आणविक गवेषणा की घोषणा की। नोबेल पुरस्कार प्राप्त जीव विज्ञानी आल्डुअस हक्सले ने गीता का अनुवाद किया है और स्वदेशी गणितज्ञ नारलीकर ने गीता कंठस्थ की है। प्रत्येक मनुष्य जीवन संग्राम में, रणक्लान्त सैनिक, अर्जुन के समान विषाद ग्रस्त। विषाद से मुक्ति सभी का काम्य है। अर्जुन को उपलक्ष करके शाश्वतकाल के निखिल मानव को विषाद के हाथ से मुक्ति तथा मोक्ष के लिए योग मार्ग का भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में प्रदर्शन किया है।

मेरी अन्तरिक्ष यात्रा में मेरे पास रखी गीता निरन्तर मेरा उत्साह बढ़ाती रही, तभी में 195 दिनों तक अंतरिक्ष में रहने का विश्व कीर्तिमान स्थापित कर सकी।

—सुनीता विलियम्स